CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2·1 VHP

# जैन गीता

वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान 3526

## ('समणसुत्तं' का हिन्दी-पद्यानुवाद)

मुनि श्री १०८ आचार्य विद्यासागरजी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहृदयी पं. फूलचंद जी
सिद्धान्तशास्त्री
को सादर भेंट।
२६।४।८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# समणसुत्तं

## ( पद्यानुवाद )

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
३५८६
नरिया, वाराणसी

अनुवादक :
आचार्य मुनिश्री विद्यासागरजी

श्री मुनि संघ स्वागत समिति
सागर, मध्यप्रदेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समणसुत्तं

●

पद्यानुवाद : आचार्य विद्यासागरजी

●

मनोभावना : आचार्य श्री विद्यासागरजी

●

आद्यमिताक्षर : डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य

●

प्रकाशकीय : सिंघई जीवेन्द्र कुमार जैन

●

प्रकाशक :
श्री मुनिसंघ स्वागत समिति,
सागर, मध्यप्रदेश

●

मुद्रक :
नई दुनिया प्रेस,
केसरबाग मार्ग, इन्दौर-२,

●

प्रथम संस्करण
मार्च १९७८

●

मूल्य :
साधारण—छह रुपये
सजिल्द—आठ रुपये

●

*SAMAN SUTTAM, Padyanuvad*
by Acharya Vidyasagarji
Religion

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# विषयानुक्रमणी

## प्रथम खण्ड : ज्योतिर्मुख


| | पद्य | | पद्य |
|---|---|---|---|
| १. मंगलसूत्र | २–५ | ९. धर्मसूत्र | २६–२७ |
| २. जिनशासनसूत्र | ६–९ | १०. संयमसूत्र | २८–४३ |
| ३. संघसूत्र | १०–११ | ११. अपरिग्रहसूत्र | ४४–४५ |
| ४. निरूपणसूत्र | १२–१५ | १२. अहिंसासूत्र | ४६–४९ |
| ५. संसारचक्रसूत्र | १६–१७ | १३. अप्रमादसूत्र | ५०–५३ |
| ६. कर्मसूत्र | १८–२१ | १४. शिक्षासूत्र | ५४–५५ |
| ७. मिथ्यात्वसूत्र | २२–२३ | १५. आत्मसूत्र | ५६–६१ |
| ८. राग-परिहारसूत्र | २४–२५ | | |


## द्वितीय खण्ड : मोक्षमार्ग


| | | | |
|---|---|---|---|
| १६. मोक्षमार्गसूत्र | ६४–६७ | २६. समिति-गुप्तिसूत्र | १२४–१३३ |
| १७. रत्नत्रयसूत्र | ६८–७१ | २७. आवश्यकसूत्र | १३४–१३९ |
| १८. सम्यग्दर्शनसूत्र | ७२–७९ | २८. तपसूत्र | १४०–१५३ |
| १९. सम्यग्ज्ञानसूत्र | ८०–८५ | २९. ध्यानसूत्र | १५४–१५९ |
| २०. सम्यक्चारित्रसूत्र | ८६–९३ | ३०. अनुप्रेक्षासूत्र | १६०–१६५ |
| २१. साधनासूत्र | ९४–९५ | ३१. लेश्यासूत्र | १६६–१७१ |
| २२. द्विविध धर्मसूत्र | ९६–९७ | ३२. आत्मविकाससूत्र (गुणस्थान) | १७२–१७७ |
| २३. श्रावकधर्मसूत्र | ९८–१०७ | ३३. संलेखनासूत्र | १७८–१८५ |
| २४. श्रमणधर्मसूत्र | १०८–११५ | | |
| २५. व्रतसूत्र | ११६–१२३ | | |




Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## तृतीय खण्ड : तत्त्व-दर्शन


पद्य

३४. तत्त्वसूत्र १८८–१९७

३५. द्रव्यसूत्र १९८–२०५

३६. सृष्टिसूत्र २०६–२०९


## चतुर्थ खण्ड : स्याद्वाद


३७. अनेकान्तसूत्र २१२–२१५

३८. प्रमाणसूत्र २१६–२२१

३९. नयसूत्र २२२–२२९

४०. स्याद्वाद व सप्तभङ्गीसूत्र २३०–२३१

४१. समन्वयसूत्र २३२–२३७

४२. निक्षेपसूत्र २३८–२४१

४३. समापन २४२–२४३

४४. वीर-स्तवन २४४–२४७




Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# मनो भावना

विगत बीस मास पूर्व की बात है, राजस्थान स्थित अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी में महावीर-जयन्ती के शुभ अवसर पर स संघ मैं उपस्थित था। उस समय 'समण सुत्तम्' का जो सर्वसेवा संघ वाराणसी से प्रकाशित है, विमोचन हुआ। यह एक सर्वमान्य संकलित ग्रन्थ है। इसके संकलन कर्ता ब्र. जिनेन्द्र वर्णी, जो स्व. क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी जी के अनन्य शिष्यों में एक हैं। आपने जैन सिद्धान्त का आलोडन करके यह नवनीत समाज के सामने प्रस्तुत किया है। आपका यह कार्य प्रेरणाप्रद एवं स्तुत्य है।

इस ग्रन्थ में चारों अनुयोगों के विषय यथा स्थान चित्रित हैं। अध्यात्मरस से ओतप्रोत ग्रन्थराज समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़, पंचास्तिकाय, द्रव्य संग्रह, गोम्मटसार आदि ग्रन्थों की गाथाएँ, इसमें प्रचुर रूप से संकलित हैं। यह ग्रन्थ आद्योपान्त प्राकृत गाथाओं से संपादित है। पूज्य पं. कैलाशचन्द सिद्धान्ताचार्य ने इस ग्रन्थ का संक्षेप किन्तु सुन्दर गद्यानुवाद किया है। जो प्राकृत भाषा से अनभिज्ञ हैं, उन्हें यह ग्रन्थगत विषय को समझने में पूर्ण सहायक है।

'समण सुत्तम्' के मूल प्रेरणा स्रोत, समाजसेवी, सर्वसेवा संघ के निर्माता विनोबाजी भावे हैं। पच्चीसवी सौ वीर निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में, जैन समाज से आपने माँग की थी, कि यद्यपि जैन साहित्य विपुल मात्रा में है, तथापि उससे सब लोग लाभ ले नहीं पा रहे हैं। अतः समाज के सम्मुख एक ऐसी कृति प्रस्तुत की जाय, कि जिससे जैनेतर भी जैनदर्शन से भाग्योन्नति कर सकें। वह कार्य आज सानन्द संपन्न हुआ।

मन में बहुत काल से विचार करते ले रहा था, कि एक ऐसा काव्य ग्रन्थ का निर्माण किया जाय, कि, आबाल वृद्ध उस ग्रन्थ का संगीत के माध्यम से, अल्प काल में ही पाठ कर, जैन दर्शन की उपयोगिता एवं ध्रुवबिन्दु के संबंध में परिचय प्राप्त कर सकें, और जीवन को समुन्नत बना सकें। किन्तु काललब्धि के बिना भी कोई कार्य नहीं हो सकता। और पुरुषार्थ से मुख मोड़कर काललब्धि की प्रतीक्षा करने से भी काललब्धि नहीं आ सकती है। इसी बीच बनारस के दो पत्रों के माध्यम से समणसुत्तम् के पद्यानुवाद के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई। एक पत्र था, श्रीमान् पं. जमनालाल शास्त्री जी का, एक दूसरा था श्रीमान् कृष्णराज मेहता जी का।

'शुभस्य शीघ्रं' इस सूक्ति को चरितार्थ करते हुए, गुरुस्मृति के साथ, ग्रन्थ का पद्यानुवाद प्रारम्भ किया; तीन चार स्थलों में, गाथागत रहस्य को समझने में, पंडित कैलाशचन्द जी कृत गद्यानुवाद ने दीपक का काम किया है। किन्तु यह अनुमान नहीं था, कि अनुवाद (पद्यानुवाद) इतना अल्प काल में सम्पन्न होगा। अनुवाद में केवल ८॥ मास लगे, और सिद्ध क्षेत्र कुण्डलगिरि पर सानन्द सम्पन्न हुआ, जो पाठकों के सम्मुख "जैनगीता" के रूप में प्रस्तुत है।

'जैन' यह शब्द आज तक बड़े श्रीमानों, धीमानों एवं संतों की दृष्टि में भी जातिवाचक ही रहा है। जब कि वह उस सहज अजर अमर, अमूर्त आत्मा की ओर मुमुक्षुओं को आकृष्ट करता है। विषय कषायों से ऊपर उठाकर, उन्हें परमशांति पथ का प्रदर्शन कराता है। जैन इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है। जयति स्वकीयानि इन्द्रियाणि आत्मानं स जिनः, जिन एव जैन इति। जो महापुरुष अपनी इन्द्रियाँ एवं आत्मा को पूर्णरूपेण जीतता है, उन्हें कुमार्ग से बचाता है, वह जिन है। जिन ही जैन है। जैन की गी अर्थात् वाणी, और उस गी का भाव या सार के अर्थ में ता प्रत्यय का प्रयोग करने से 'गीता' शब्द की निष्पत्ति होती है। अतः यह सुस्पष्ट हुआ, कि उन जिनेन्द्र भगवान् की वाणी के सार का नाम ही "जैन गीता" सिद्ध है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पौद्गलिक वर्णनिरूप शब्दों में ही न उलझकर, शब्दानबोध से अर्थानबोध एवं अर्थानबोध से, उस परम सत्तास्वरूप केन्द्र बिन्दु का भी अवगम प्राप्त कर, उस तक जाने का साधकों को, सतत् प्रयास करते रहना चाहिए। इसी उद्देश को अपनी दृष्टि में रख कर, साधनापथारूढ़ साधकों संतो ने स्वपर कल्याण हेतु हित, मित, मिष्ट वचनों से, हमें उस सहज चेतनामय सत्ता का उपदेश दिया है। और आजीवन उस परम सत्ता का मनन-मंथन कर, नवनीत के रूप में विपुल साहित्य का निर्माण किया है।

झर झर झरता झरना,
कहता चल चल चलना।
उस सत्तासे मिलना,
पुनि पुनि पड़े न चलना।

लखना तज कर लिखना सहज शुद्धात्मा को अभीष्ट नहीं था, तथापि चिरानुभूत संकल्प विकल्प के संस्कार ने चंचल मन को लिखने के विकल्प की ओर आकृष्ट किया। फलस्वरूप आभ्यंतर परिणति छूटी, और बहि:परिणति प्रवाहित हुई। छद्मस्थका मनोबल इतना निर्बल है, कि वह अन्तर्मुहूर्त के उपरान्त अपने चंचल स्वभाव का परिचय दिये बिना नहीं रहता। इसी से इस मन ने प्रस्तुत कृति लिखने का विकल्प किया। यह भी समयोचित ही हुआ। आगमोल्लेख है, कि विषयकषायरूप अशुभोपयोग से बचने के लिए, सहज स्वभाव-रूप शुद्धोपयोग की उपलब्धि के लिए, तत्साधनभूत शुभोपयोग का आलम्बन लेना मुनियों, सत्पथ साधकों एवं संतों के लिए भी सामयिक उपादेय है ही। अत: मनोभावना यही है कि अध्यात्म रस से परिपूरित इस कृति का मनोयोग से आस्वादन कर, भव्य पाठक परम तृप्ति का, अनुभव करें।

समता भरी णिमा नदी,
उन्नत शिखरपर चढ़ी।
निज दृष्टि निजमें गड़ी,
धन्यतम है यह घड़ी।

यह सब रहा, वयोवृद्ध तपोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध आचार्य गुरुवर श्री ज्ञानसागर-महाराजजी के प्रसाद का परिपाक है, कि परोक्षरूपसे, उन्हीं के अभय चिन्ह चिन्हित करकमलों में जैन गीताका समर्पण करता हुआ........................

गुरुचरणारविन्दचंचरीक

ॐ शुद्धात्मने नमः
ॐ निरंजनाय नमः
ॐ श्री जिनाय नमः
ॐ निजाय नमः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# आद्य मिताक्षर

## 'जैन गीता' के रचयिता

'जैन गीता' के रचयिता हैं स्वनामधन्य परम पूज्यवर श्री १०८ आचार्य विद्यासागर जी महाराज। आचार्य महाराज का 'विद्यासागर' नाम अन्वर्थ नाम है। आपके हृदय में न्याय, व्याकरण, साहित्य, आगम तथा अध्यात्म आदि अनेक विद्याओं का सागर लहरा रहा है। मातृभाषा कन्नड़, मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा का अगाध वैदुष्य आपको प्राप्त है। सुदूरवर्ती कर्नाटक प्रान्त के मूल निवासी होने पर भी आप हिन्दी का इतना अविरल और स्पष्ट प्रवचन करते हैं कि कोई नवागन्तुक श्रोता यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि आपकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।

## आचार्य विद्यासागर के गुरु

आचार्य विद्यासागरजी, परमपूज्य चारित्रभूषण आचार्य ज्ञानसागरजी के पट्ट शिष्य हैं। आचार्य ज्ञानसागरजी जयोदय, वीरोदय, दयोदय आदि महाकाव्यों के प्रणेता रहे हैं। संस्कृत-साहित्य पर आपका पूर्ण अधिकार था। गद्य, पद्य तथा चंपू काव्यों की रचना में आपकी लेखनी निर्बाध रूप से चली है। आप चारों अनुयोगों के विशिष्ट ज्ञाता थे। प्रवचन-कला के पारगामी तथा शब्दों के विश्लेषण करने में अत्यन्त निपुण थे। स्वयं ज्ञान-गरिमा से युक्त होकर आप व्यक्ति-विशेष की परख करने में अत्यन्त कुशल थे। उस कुशलता को ही सफल समझना चाहिये कि उन्होंने अल्पवयस्क विद्यासागर की विशिष्ट योग्यता को भाँप लिया; इसीलिए अपने संपर्क में रखकर अल्प समय में ही उन्हें संस्कृत भाषा का निष्णात विद्वान् बना दिया।

## जन्म परिचय

आचार्य विद्यासागरजी का जन्म विक्रम संवत् २००३ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन सदलगा (जि. बेलगाम; कर्णाटक) में हुआ। आपके पिताजी का नाम मल्लप्पाजी (आचार्य धर्मसागरजी के संघस्थ मुनिराज मल्लिसागरजी) था और माता का नाम श्रीमतीजी (आचार्य धर्मसागरजी की संघस्थ आर्यिका समयमतीजी) था। इनका बाल्यावस्था का नाम विद्याधरजी था। इनके तीन भाई थे, जिनमें दो क्षुल्लक-दीक्षा लेकर आचार्य महाराज के साथ ही ज्ञान-ध्यान में लीन हैं तथा दो बहिनें थीं, जो आचार्य धर्मसागरजी महाराज के संघ में आर्यिका की दीक्षा लेकर आत्म-साधना कर रही हैं। कैसे पूर्वभव के संस्कारी जीव हैं कि जिनका पूरा का



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूरा परिवार गृह-त्याग कर आत्म कल्याण में निरत है। मात्र एक भाई उदासीन भाव से गृहस्थी का संचालन कर रहा है।

**चल पड़े घर छोड़कर**

बालक विद्याधर की प्रतिभा जन्म से ही कुशाग्र थी। केवल ९ वर्ष की अवस्था में प्रातःस्मरणीय आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का उपदेश श्रवण कर अपने आपको धन्य माना। आपका शरीर गौर वर्ण तथा सौम्य मुद्रा से युक्त है। अल्प वय में ही इनकी ज्ञान-ज्योति प्रस्फुरित हो गई थी। हृदय की प्रेरणा से प्रेरित हो बालक विद्याधर गृहत्याग कर जयपुर की ओर चल पड़ा। और उस समय खानिया की नसिया में विद्यमान आचार्य देशभूषणजी महाराज से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर परम प्रसन्नता का अनुभव करने लगा। ब्रह्मचर्य व्रत लेकर बालक विद्याधर स्व. आचार्य ज्ञानसागरजी के संपर्क में आया। आचार्य महाराज ने उसकी अन्तरात्मा को परखा और उसे सब प्रकार से योग्य मानकर विद्याध्ययन कराया।

**मुनिदीक्षा**

अजमेर के चातुर्मास में आषाढ़ शुक्ल पंचमी वि. स. २०२५ (३० जून १९६८) को आचार्य ज्ञानसागरजी ने ब्र विद्याधर को दिगम्बरी दीक्षा प्रदान की। गुरु-शिष्य का यह संयोग मणि-काञ्चन के संयोग के समान अत्यन्त आकर्षण का विषय रहा। विद्या तथा दीक्षा-गुरु के साथ रहकर मुनि विद्यासागरजी ने जैनागम के अगाध सागर में मनचाहा अवगाहन किया। उनके ज्ञान की गरिमा सर्वत्र फैलने लगी। विशाल संघ के आडम्बर से रहित मात्र गुरु और शिष्य का युगल विहार करता हुआ जहाँ पहुँच जाता था, वहाँ की जनता अपने भाग्य को सराहने लगती थी।

**आचार्यपद की प्राप्ति**

अपनी वृद्धावस्था का विचार कर आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज ने अपने सुयोग्य शिष्य मुनि विद्यासागरजी को नसीराबाद में २१-११-७२ के दिन आचार्यपद से विभूषित किया। आचार्य विद्यासागर ने अपने गुरु की सेवा जितनी तत्परता और तन्मयता से की थी वह उस समय के दर्शकों के नेत्रों को आज भी सजल कर देती है। अभी ३१ अक्टूबर को कुण्डलपुर में अजमेर के एक सज्जन यह कहते-कहते कि '१० लाख की संपत्ति पाने वाला लड़का भी पिता की उतनी सेवा नहीं करता है जितनी कि आचार्य विद्यासागर ने अपने गुरु की की थी' आँसू पोंछने लगे।

**ग्रंथकार के रूप में**

आपका सतत् ज्ञानाभ्यास चलता है। एक क्षण भी आप व्यर्थ के विसंवाद में व्यतीत नहीं करते हैं। कोई विद्वान् यदि आपके दर्शनों के लिए आता है तो एक-दो बात करने के बाद ही आप तत्त्वचर्चा का प्रसंग छेड़ देते हैं। आप कुशल



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि हैं। कविता के माध्यम से आपने अनेक ग्रंथों की रचना की है। आपके द्वारा रचित कुछ ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं :

श्रमणशतक, निजानुभव शतक, निरञ्जन शतक, भावना शतक, योगसार, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश, एकीभाव स्तोत्र, कल्याण मन्दिर स्तोत्र का पद्यमय अनुवाद आदि। अभी हाल कुण्डलपुर के द्वितीय चातुर्मास में आपने **समयसार** का वसन्ततिलका छन्द में सुन्दर अनुवाद किया है। पूज्य महाराज जी जब इस वसन्ततिलका छन्द को अपनी प्रकृति-प्रदत्त स्वर-लहरी के साथ पढ़ते हैं, तब श्रोता मन्त्रमुग्ध-सा स्थिर हो जाता है।

**शिष्य-परम्परा**

इस समय आपकी शिष्य-परम्परा में निम्नलिखित ऐलक और क्षुल्लक हैं :

श्री १०५ ऐलक दर्शनसागरजी,
श्री १०५ क्षुल्लक स्वरूपानन्दजी,
श्री १०५ ,, नियमसागरजी,
श्री १०५ ऐलक योगसागरजी,
श्री १०५ क्षुल्लक समयसागरजी,
श्री १०५ ,, चारित्रसागरजी।

**चातुर्मास श्रृंखला**

अब तक आपके निम्नलिखित स्थानों में चातुर्मास हो चुके हैं :—

| | | |
|---|---|---|
| अजमेर | सन् | १९६८ |
| ,, | ,, | १९६९ |
| किसनगढ़ | ,, | १९७० |
| ,, | ,, | १९७१ |
| नसीराबाद | ,, | १९७२ |
| ब्यावर | ,, | १९७३ |
| अजमेर | ,, | १९७४ |
| फिरोजाबाद | ,, | १९७५ |
| कुण्डलपुर | ,, | १९७६ |
| ,, | ,, | १९७७ |

**महातपस्वी**

यह देखकर आश्चर्य होता है और श्रद्धा से चरणों में मस्तक झुक जाता है कि आचार्य विद्यासागरजी दीक्षा के समय से ही पाँच रसों के त्यागी हैं। मात्र दूध लेते हैं। यदि किसी गृहस्थ के चौका में वह भी नहीं है तो उसकी आवश्यकता नहीं रहती। आप अपनी तथा शिष्यों की दिनचर्या पर कड़ी दृष्टि रखते हैं। शीतकाल में भी एक चटाई के सिवाय घास का उपयोग नहीं करते!



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपके जीवन के अनेक संस्मरण हैं, जो इस प्रस्तावना के अल्पकाय लेख में गुम्फित नहीं किये जा सकते ।

**पुण्यशाली**

अन्तिम अननुबद्ध केवली श्रीधर स्वामी की निर्वाण-भूमि कुण्डलगिरि में आपके दो चातुर्मास हो चुके हैं। जहाँ मुनीम और पुजारी के सिवाय गृहस्थों के अन्य घर नहीं हैं, वहाँ चातुर्मास का संकल्प देख मुझे लगता था कि इस क्षेत्र पर संघ का निर्वाह किस प्रकार होगा; परन्तु पूज्य महाराज के पुण्य-परमाणुओं का आकर्षण देख आश्चर्य होता है कि उस कुण्डलपुर क्षेत्र पर चौका लगाने वाले भक्तों की एक लम्बी पारी खड़ी होती है और उसके नमोऽस्तु महाराज, अत्र तिष्ठ तिष्ठ की ध्वनि से आकाश-मण्डल गूँज उठता है। तपस्वी साधु के जिसके चौके में आहार हो जाते हैं वह अपने-आपको पुण्यशाली मानता है ।

इन्हीं परम तपस्वी आचार्य विद्यासागर जी की दिव्य लेखनी से प्रसूत यह जैन गीता है।

**जैन-गीता का प्रेरणा-सूत्र समणसुत्तं**

विश्ववन्द्य महात्मा गांधी के पदानुगामी एवं परम श्रद्धालु आचार्य विनोवा भावे की प्रेरणा से प्रभावित होकर ब्र. जिनेन्द्र वर्णी ने 'जिनधम्मसार' नाम का संकलन किया जो दिल्ली में हुई संगीति में सर्वसम्मत होने पर 'समणसुत्तं' नाम से प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी के द्वारा हुआ। 'समणसुत्तं' प्राकृत-गाथाओं का संकलन है। उसके १. ज्योतिर्मुख, २. मोक्षमार्ग, ३. तत्त्व-दर्शन, और ४. स्याद्वाद शीर्षक चार खण्डों में जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाली गाथाएँ संकलित हैं। अर्थवोध की सुगमता के लिए प्राकृत-गाथाओं के नीचे संस्कृत-छाया और सामने के पृष्ठ पर हिन्दी-गद्यानुवाद दिया गया है। चारों खण्डों में ७५६ गाथाएँ संकलित हैं। ये गाथाएँ दिगम्बर तथा श्वेताम्बर ग्रन्थों से ली गई हैं। जो गाथाएँ अपने मूल ग्रन्थों में प्रकरणानुसार यथास्थान स्थित थीं उन्हें वहाँ से लेकर एक नवीन ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार विभिन्न स्थानों से लाकर विविध फूलों के पौधे एक उद्यान में लगाये जाते हैं और उनसे उस उद्यान को सुशोभित किया जाता है, उसी प्रकार इस **समणसुत्तं** में अनेक गाथाएँ संकलित की गई हैं और उनसे इस नूतन ग्रंथ को सुशोभित किया गया है।

इसी 'समणसुत्तं' की गाथाओं का पूज्यवर आचार्य विद्यासागरजी ने वसन्ततिलका छंद में 'जैनगीता' नाम से अनुवाद किया है। अनुवाद मूलानुगामी हैं और 'समणसुत्तं' के समान ७५६ पद्यों में पूर्ण हुआ है। वसन्ततिलका संस्कृत का छंद है। इसी छंद में जैनधर्म के प्रसिद्ध स्तोत्र भक्तामर और कल्याण मन्दिर स्तोत्र की रचना हुई है। यह छंद अनेक स्वरों में पढ़ा जाता है। संस्कृत का वर्णिक गण-प्रधान छंद होने



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से यद्यपि इसमें संस्कृत शब्दों का समावेश अधिक मात्रा में हुआ है तथापि अर्थबोध में कठिनता नहीं होती है। जिस प्रकार महाकवि स्व. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा संस्कृत वृत्तों में लिखा हुआ 'प्रियप्रवास' महाकव्य हिंदी-साहित्य की शोभा बढ़ा रहा है उसी प्रकार यह जैन गीता भी हिन्दी-साहित्य की शोभा बढ़ावेगी, यह आशा है।

'समणसुत्तं' के समान 'जैन गीता' को भी १. ज्योतिर्मुख, २. मोक्षमार्ग, ३. तत्त्वदर्शन, और ४. स्याद्वाद नामक चार खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड के १५ प्रकरणों में १९१ पद्य हैं। द्वितीय खण्ड के १८ प्रकरणों में ३९६ पद्य हैं। तृतीय खण्ड के ३ प्रकरणों में ७२ पद्य हैं और चतुर्थ खण्ड के ८ प्रकरणों में ९७ पद्य हैं। प्रत्येक खण्ड का विषय अपने शीर्षक से स्पष्ट है।

यहाँ उदाहरण के रूप में प्रत्येक खण्ड के कुछ गाथासूत्र और उनका अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है–

१. ज्योतिर्मुख

१८. जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अभिदभूयं ।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥

–समणसुत्तं

१८. पीयूष है, विषय सौख्य-विरेचना है,
पीते सुशीघ्र मिटती चिर वेदना है।
भाई जरा मरण रोग विनाशती है,
संजीवनी सुखकरी 'जिनभारती' है॥

–जैनगीता

४०. णिच्छयमवलंवंता णिच्छयदो णिच्छयं अजाणंता ।
णासंति चरणकरणं बाहिरकरणालसा केई ॥

–समणसुत्तं

४०. जाने नहीं कि वह निश्चय चीज क्या है,
हैं मानते सकल बाह्य क्रिया वृथा है।
वे मूढ़ नित्य रट निश्चय की लगाते
चारित्र नष्ट करते, भव को बढ़ाते॥

–जैनगीता

५१. जाणिज्जइ चिंतिज्जइ जम्मजरामरणसंभवं दुक्खं ।
न य विसएसु विरज्जई अहो सुबद्धो कवटगंठी ॥

–समणसुत्तं



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५१. हो वेदना जनम मृत्यु तथा जरा से,
ऐसा सभी समझते, सहसा सदा से ।
तो भी मिटी विषय, लोलुपता नहीं है,
मायामयी सुदृढ़ गाँठ खुली नहीं है ।।

—जैनगीता

२. मोक्षमार्ग

२८३. चत्ता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्हि ।
ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं ।।

—समणसुत्त

२८३. जो पंच पाप तज पावन पुण्य पाता,
हो दूर भी अशुभ से शुभ को जुटाता ।
रागादि भाव फिर भी यदि ना तजेगा,
शुद्धात्म को न मुनि होकर भी भजेगा ।।

—जैनगीता

५१८. अणु सोअइ अण्ण जणं अण्णभवंतरगयं तु वालजणो ।
न वि सोयइ अप्पाणं किलिस्समाणं भवसमुद्दे ।।

—समणसुत्त

५१८. तू ने भवाम्बु निधिमज्जित आतमा की
चिंता न की न अब लौं उससे दया की ।
पै वार-वार करता मृत साथियों की,
चिंता दिवंगत हुए उन वांधवों की ।।

—जैनगीता

३. तत्त्वदर्शन

'६१३. सेणावइम्मि णिहए जहा सेणा पणस्सई ।
एवं कम्माणि णस्संति मोहणिज्जे खयं गए ।।

—समणसुत्त

६१३. होता विनष्ट जब मोह अशान्तिदाई,
तो शेष कर्म सहसा नश जाय भाई ।
सेनाधिनायक भला रण में मरा हो,
सेना कभी बच सके ? न बचे जरा ओ ।।

—जैनगीता



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६४७. जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो सदेहमत्तं पमासयदि ॥

—समणसुत्त

६४७. ज्यों दूध में पतित माणिक दूध को ही,
है लाल-लाल करता सुन मूढ़ मोही।
त्यों जीव देह थित हो निज देह को ही,
सम्यक् प्रकाशित करे, नहिं अन्य को ही॥

—जैनगीता

४. स्याद्वाद

७२५. ते सावेक्खा सुणया णिरवेक्खा ते वि दुण्णया होंति।
सयल ववहारसिद्धी सुणयादो होदि णियमेण॥

—समणसुत्त

७२५. सापेक्ष ही सुनय ही सुख को संजोते,
माने गये कुनय हैं निरपेक्ष होते।
संपन्न हो सुनय से व्यवहार सारे
नौका-समान भव-पार तुझे उतारे॥

—जैनगीता

७३५. णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं सगपरसमएहिं वज्जिज्जो॥

—समणसुत्त

७३५. संसार में विविध कर्म-प्रणालियाँ हैं,
ये जीव भी विविध औ उपलब्धियाँ हैं।
भाई अतः मत विवाद करो किसी से
साधर्मि से, अनुज से, पर से, अरी से॥

—जैनगीतां

उपर्युक्त उद्धरणों से पाठक सहज ही समझ सकेंगे कि अनुवाद कितना मूलानुगामी है और उसमें मूलसूत्र का हार्द कितना पकड़ा गया। अनुवाद की भाषा एक प्रवाह में बह रही है। भाषा की सुगमता से अर्थबोध स्वयं होता जाता है। मैंने देखा है सागर में संपन्न हुए इस जैनगीता के अखण्ड पाठ को और भाव-विभोर होकर अनेक स्वर-लहरियों में पढ़ते हुए स्त्री-पुरुषों को।

संगीत में एक ऐसा अद्भुत आकर्षण होता है कि पाठक विवश हो स्वयं उस ओर बढ़ता चला जाता है। पूज्य आचार्यवर अपने प्रवचनों में ग्रंथों की गूढ़ ग्रंथियों



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को जब सुगम शैली में प्रस्तुत करते हैं तब ऐसा भाव उठता है कि यदि महाराजजी गद्य में किसी मौलिक ग्रंथ की रचना करें तो उससे जनसाधारण का बहुत हित होगा और उदीयमान नवीन वक्ताओं को विविध शैलियों का परिचय प्राप्त होगा। भावना के अनुसार महाराज जी से प्रार्थना भी की गई; परन्तु उन्होंने हँस कर उत्तर दिया कि वे पाठक गद्य ग्रंथ को तो एक बार पढ़कर अलग रख देते हैं पर काव्य की भाषा में लिखे ग्रंथों को बार-बार पढ़ते हैं। चलते-फिरते, उठते-बैठते संगीतमय पंक्तियों को गुनगुनाते रहते हैं। जिनेन्द्रदेव के द्वारा प्रतिपादित सूत्र, अधिक-से-अधिक काल तक पाठकों के सामने रहे यह उत्तम बात है। बात ठीक भी है भारत का प्राचीनतम साहित्य जितना छन्दोबद्ध उपलब्ध है, उतना गद्य निबद्ध नहीं। व्याकरण और न्याय जैसे गहन विषय को भी कितने ही लेखकों ने छंदोबद्ध किया है।

### जैन सिद्धान्त सार्वकालिक और सार्वभौमिक

जैनधर्म के द्रव्य-स्वातन्त्र्य, अहिंसा, अपरिग्रह तथा अनेकान्त आदि सिद्धान्त सार्वकालिक और सार्वभौमिक हैं। इन सिद्धान्तों की उपयोगिता सदा से रही है और सदा काल रहेगी। मानव ने जिस समय इनकी अवहेलना की है, उसी समय उसका जीवन कण्टकापूर्ण हुआ है और जब उसने इनका समादर किया है तब इसका जीवन सुखमय हुआ है। मेरा तो विश्वास है कि धर्म का आविर्भाव जनकल्याण की भावना से ही किया गया है। किसी भी धर्म का उद्देश्य किसी को कष्ट पहुँचाना नहीं है। जब मनुष्य सत्यग्राही न बन कर दुराग्रही हो जाता है तभी पारस्परिक संघर्ष की वृद्धि होती है; अतः आचार्य विनोबा भावे के शब्दों में सबको सत्यग्राही होना चाहिये। जिस धर्म में जो सत्य दिखे उसे नम्रता के साथ ग्रहण करना चाहिये। अनेकान्त का हार्द भी यही है। इसी विधि से धार्मिक विवादों का समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

### 'श्रमण' शब्द की व्याख्या

कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार के प्रारम्भ में मोह और क्षोभ से रहित आत्मा के साम्य परिणाम को धर्म कहा है। इस धर्म को ही उन्होंने चारित्र संज्ञा दी है। वास्तव में धर्म आत्मा का निज भाव है इसलिए आत्मा के आश्रय से ही उसकी उद्भूति होती है। आत्म स्वभाव की उद्भूति में जो शुभभाव और शरीर के माध्यम से होने वाली शुभक्रियाएँ सहायक हैं उन्हें कारण में कार्य का उपचार कर धर्म कहा जाता है। आत्मा का स्वभाव पूर्ण वीतराग तथा सर्वज्ञता से सम्पन्न है। ज्ञानी जीव का पुरुषार्थ इसी आत्मस्वभाव को प्रकट करने में तत्पर होता है।

श्रमण मुद्रा ऐसे ही पुरुषार्थी जीवों की मुद्रा है। इस मुद्रा को धारण किये बिना उपयुक्त पुरुषार्थ में सफलता नहीं मिलती प्राकृत के 'समण' शब्द की संस्कृत छाया श्रमण, शमन अथवा समन होती है। जो अपने विकारों को नष्ट करने



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए श्रम-यत्न कर रहा है वह श्रमण है। जिसने क्रोधादि कषायों को गृहस्थों की अपेक्षा अधिक शान्त कर लिया है वह शमन है और जिसने इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में होने वाले राग-द्वेष को नष्ट कर मध्यस्थ भाव धारण कर लिया है वह समन है। श्रमण शब्द की परिभाषा स्थापित करते हुए कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार के चारित्राधिकार में कहा है–

समसत्तु वंधुवग्गो समसुहदुक्खोपसंसणिंद समो।
समलोड्‌ढु कंचणो पुण जीविद मरणे समो समणो।।४१।।

जिसे शत्रु और वन्धुओं का समूह समन है, जो सुख-दुःख, प्रशंसा और निंदा में साम्यभाव रखता है, पाषाण खंड और सुवर्ण में जो सम है तथा जीवन और मरण में जो मध्यस्थ रहता है, वह श्रमण (समन) है।

इसी संदर्भ में और भी कहा है–

दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एमग्गगदोत्ति मदो सामण्णं तस्स परिपुण्णं ।।४२।।

जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों में एक साथ उद्यमवंत है तथा उन्हीं में एकाग्रता को प्राप्त है उसी का श्रामण्य–श्रमणपना–परिपूर्ण होता है।

शमन शव्द की व्याख्या करते हुए कहा है—

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्ण मासेज्ज।
जदि समणो अण्णाणी वज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं ।।४३।।

अत्थेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोस मुवयादि।
समणो जदि सो णियदं स्ववेदि कम्माणि विविधाणि ।।४४।।

जो श्रमण अन्य द्रव्य को प्राप्त कर यदि राग और द्वेष करता है, तो वह अज्ञानी है तथा विविध कर्मों से वन्ध को प्राप्त होता है। इसके विपरीत जो अन्य पदार्थों में न मोह करता है, न राग करता है और न द्वेष करता है वह शमन नियम से विविध कर्मों का क्षय करता है।

जैनधर्म प्रतिपादित आचार का उज्ज्वल रूप श्रमण मुद्रा में ही परिलक्षित होता है, रागद्वेष की दलदल में फंसे हुए गृहस्थ के वेष में नहीं; इसीलिए जैनधर्म और श्रमणधर्म को पर्यायवाची कहा गया है। जैन श्रमण का आहार-विहार इतना उत्कृष्ट है कि उसमें छोटे-से-छोटे जीव की भी रक्षा का अभिप्राय रखा गया है। दूसरे शव्दों में यह कहा जा सकता है कि श्रमण जैनधर्म के प्रतीक हैं। उनके लक्ष्य, आचार, सिद्धान्त और कथन-शैली को प्रतिपादित करने वाली प्राचीन गाथाएँ समणसुत्त में संकलित हैं और उनका श्रुति-सुभग कर्ण-कमनीय हिन्दी-पद्यानुवाद पूज्य आचार्य महाराज ने अपनी दिव्य लेखनी से प्रस्तुत किया है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस प्रकार भगवद् गीता का देश-विदेश में प्रचार है, उसी प्रकार इस जैन गीता का भी देश-विदेश में प्रचार होगा। वाणी की प्रभुता वक्ता की प्रभुता से बढ़ती है। जैन गीता की वाणी एक परम तपस्वी साधु की वाणी है, इसलिए इसकी प्रभुता दिनोंदिन बढ़ेगी, इसके आगे चलकर अनेक सुन्दर संस्करण निकलेंगे यह मेरा आत्मविश्वास है।

**आभार प्रदर्शन**

इस जैनगीता के प्रकाशन में सागर के उदीयमान, भद्र परिणामी, नवयुवक संतोषकुमारजी और धार्मिक गतिविधियों में सदा साथ देने वाले सि. जीवेन्द्रकुमारजी, अध्यक्ष मुनि संघ स्वागत समिति, सागर का योगदान सर्वोपरि है। ये दोनों महानुभाव कुण्डलपुर में संपन्न दोनों चातुर्मासों में पूज्य आचार्य महाराज के पास वार-वार जाते-आते रहे हैं और प्रकाशन के लिए जैन गीता की पाण्डुलिपि प्राप्त करने में सफल हुए हैं इसलिए धन्यवाद के पात्र हैं। इनके सिवाय अन्य जिन महानुभावों ने इसके प्रकाशन में आर्थिक सहयोग दिया है उन सबके प्रति नम्र आभार प्रदर्शित करता हूँ। इन्दौर-निवासी डॉ. नेमीचन्दजी, संपादक 'तीर्थंकर' ने इंदौर के नई दुनिया प्रेस में इसके प्रकाशन की व्यवस्था जमा दी तथा प्रूफ आदि देखकर सहयोग दिया इसके लिये उनका आभारी हूँ। प्रास्ताविक के रूप में कुछ प्रारंभिक पंक्तियाँ लिखने के लिए पूज्य आचार्य महाराज का मेरी ओर कुछ भाव प्रकट हुआ इसलिए श्रद्धासुमन के रूप में ही कुछ पंक्तियाँ लिखकर अपने-आप को भाग्यशाली मानता हूँ। प्रार्थना है कि आचार्य महाराज इसी प्रकार अपनी रचनाओं से प्राणिमात्र का कल्याण करते रहें।

मध्यप्रदेश,
सागर
कार्तिक कृष्णा ११, सं. २५०५
७ नवम्बर १९७७

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य,
मंत्री,
भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद्



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# प्रकाशकीय

भारत भू पर गंगा-यमुना आदि पवित्र नदियाँ प्रवहमान हुईं जिनकी चरण-रज विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार व बंगाल को मिली। तीर्थंकरों ने निर्वाण-पद प्राप्त किया वे स्थान भी गुजरात, सौराष्ट्र और विहार में ही वहुतायत से हैं। केवल अंतिम केवली श्रीधर स्वामी का ध्यान बुन्देलखड की ओर आकृष्ट हुआ और वे कुंडलगिरि की ओर मुड़े एव परम पद प्राप्त किया। उनके आदर्श का अनुगमन कर ज्ञान-गंगा की एक धारा भी इस ओर मुड़ी। वह धारा है श्री १०८ आचार्य विद्या सागर जी के रूप में; जिन्होंने अपने १९७६ एवं ७७ के चातुर्मास योग में उस धारा को प्रवाहित किया जिसका एक विन्दु है "जैन गीता"।

**बा, बा, बा वा बा**

"समणसुत्तम्" का श्लोकानुवाद है "जैन गीता"। जिसका उद्भव हुआ आचार्य विनोवा भावे से (वावा)। वावा की प्रेरणा मिली अन्य मुनि श्री विद्यानंदजी, मुनि श्री जनक विजयजी, मुनिश्री सुशीलकुमारजी, मुनि श्री नथमलजी और ग्रंथ-संकलनकर्ता जिनेंद्रवर्णीजी को, जो संगीति के अध्यक्ष हैं एवं सभी हैं "वावा"। ऐसा ही एक वावा बुन्देलखंड में उत्पन्न हुआ। जिसका जन्म हंसरा (मड़ावरा) ग्राम में हुआ और कर्मभूमि जिसकी वनने का सौभाग्य सागर को प्राप्त हुआ। थे "पूज्य वर्णी वावा"।

अपने अध्यवसाय से धर्ममाता चिरोंजावाई का आश्रय पाकर विद्यार्थी "गणेश" "वर्णी गणेश" वना और अंत में वन गया "मुनि गणेश कीर्ति"।

बुन्देलखंड को जो ज्ञान-प्रकाश मिला वह अपूर्व देन है "वर्णी वावा" की, जिसने अपने को "वावा" वनने में प्रवेशद्वार माना कुंडलगिरि को और सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये "वड़े वावा" से।

इतिहास परिचायक है कि वड़े बावा की जानकारी दी नेमिचन्द्र आचार्य जी ने। भारतवर्ष को स्वतंत्रता दिलाने वाले आद्य नेता थे "गाँधी वावा"; जिनका प्रभाव पड़ा आचार्य विनोवा भावे (वावा) पर और जिन्होंने "समण



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुत्तम्" में स्वीकारा कि–"मुझ पर गीता का गहरा असर है उस गीता को छोड़कर महावीर से वढ़कर किसी का असर मेरे चित्त पर नहीं"।

उपरोक्त सभी "वावाओं" के आराध्य हैं कुंडलगिरि के "वड़े वावा" जिनके चरण-सान्निध्य में मूलानुगामी पद्यानुवाद किया आचार्य विद्या सागर "वावा" ने। आचार्य श्री ने अपने इन दोनों १९७६ एवं १९७७ के चातुर्मासों में "भावना शतक," "निरंजन शतक," ग्रंथराज "समयसार" के हिन्दी-अनुवाद आदि के लेखन द्वारा जैन वाङ्मय की जो सेवा की है वह सराहनीय एवं प्रशंसनीय है; उसी साहित्य श्रृंखला में "जैनगीता" आपके कर कमलों में देकर विशेष गौरव एवं हर्ष का अनुभव करता हूँ।

सागर-निवासी सभी धर्मप्रेमी समाज ने चाहा था कि आचार्य श्री का वर्ष १९७७ का चातुर्मास सागर में हो परन्तु वह सुयोग इस वर्ष न मिल सका; केवल उस ज्ञान-धारा का एक विन्दु "जैनगीता" के रूप में सागर को मिला और सागर ने उसे अपने में ही सीमित न रखने की विशाल भावना से ओत-प्रोत होकर इस ज्ञान-कण को जन-जन तक पहुँचाने की भावना प्रकट की और "मुनिसंघ स्वागत-समिति" सागर को इसके प्रकाशन का भार सौंपा। उपरोक्त भार समिति के अध्यक्ष के नाते निभाना अपना परम कर्त्तव्य मान शिरोधार्य किया। "जैन गीता" समणसुत्तम् के प्राकृत मूल के साथ आचार्यश्री के प्रिय वसंततिलका छंद में मूलानुगामी पद्यानुवाद है, जो प्रस्तुत है।

हम सर्वप्रथम श्रद्धावनत हैं पूज्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज के जिन्होंनें एक रूखे-भूखे बुन्देलखंड प्रदेश को अपनाया व अनेक ग्रंथों की रचना कर धर्म, ज्ञान और चारित्र की अपूर्व महिमा को प्रकटाया।

भमिका-लेखन में हमें भारतवर्ष के ख्यातिप्राप्त राष्ट्रपति-पुरस्कार विजेता, जिनवाणी के प्रखर वक्ता स्वनामधन्य डा. पं. पन्नालालजी "साहित्याचार्य" द्वारा जो सहयोग प्राप्त हुआ है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। समिति उनकी अत्यंत आभारी है।

निरन्तर प्रकाशन के कार्य की प्रेरणा देने वाले भद्र परिणामी उदीयमान युवक हैं श्री संतोष कुमारजी (बैटरी वाले) जिनके एक वड़े आर्थिक सहयोग एवं अभिरुचि का परिणाम है यह प्रकाशन; अत: वे भी समिति के धन्यवाद के पात्र हैं।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म में रुचि रखने वाले श्री हरीशंकरजी राठौर की यह समिति अत्यंत कृतज्ञ है जो कुंडलगिरि में आचार्यश्री के दर्शन कर इतने प्रभावित हुए कि अपनी फर्म मेसर्स नाथूराम पन्नालाल की ओर से ५०१) इस प्रकाशन में भेंट किये। समिति उक्त फर्म के सभी महानुभावों का आभार मानती है।

प्रकाशन में सबसे बड़ा सहयोग मिला मासिक पत्रिका 'तीर्थंकर' के सम्पादक आदरणीय डा. नेमीचन्दजी इन्दौर से, जिन्होंने अपनी अस्वस्थता एवं असुविधा के होते हुए भी इस प्रकाशन का भार उठाया और नई दुनिया प्रेस से प्रकाशित कराने में हमारा सहयोग किया। समिति हमेशा उनकी आभारी रहेगी।

नई दुनिया प्रेस ने मुद्रण में जो सहयोग प्रदान किया है इस संस्था के सभी सहयोगी महानुभावों का हमारी समिति आभार मानती है। हम आभारी हैं श्रीकृष्णराज मेहता, संचालक, सर्व सेवा संघ, वनारस के, जिन्होंने "समण सुत्तं" का प्रकाशन कर एक समन्वय मंच की प्रतिष्ठापना की।

अंत में "मुनिसंघ स्वागत समिति" सागर एक वार पुनः आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज के चरणों में विनयावनत हो भगवान् जिनेन्द्र से प्रार्थना करती है कि मोक्षमार्ग के ऐसे प्रणेता चरित्र के धनी, षोड्शकारण भावनाओं का निरन्तर पालन करने वाले लोकोपकार की भावना रखने वाले, आचार्यश्री को तीर्थंकर प्रकृति का वन्ध हो और आगामी भविष्य में वे मुक्ति वरें।

हे बोधिवृक्ष, हे योगीश्वर, हे गंगा, जैसे विमल तीर।
वुन्देलखंड का खंड-खंड तव दर्शन को हो क्षण-क्षण ॥

सिं. जीवेन्द्र कुमार
अध्यक्ष,
श्री मुनिसंघ स्वागत समिति, सागर

उपरोक्त प्रकाशन में आर्थिक सहायता देने वाले महानुभाव—

१५०१) श्री संतोष कुमारजी, कटरा, सागर
५०१) श्री नाथूराम पन्नालाल, तिलकगंज, सागर
५०१) श्री सिंघई जीवन कुमार, तिलकगंज, सागर
५०१) श्री मुनि संघ स्वागत समिति, सागर
एतदर्थ धन्यवाद।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

।। श्री वीतरागाय नमः ।।

छन्द–वसन्ततिलका

# विद्या-स्तवन

है कीर्ति पूर्ण जग में जिनकी समाई,
वैराग्य में रंग गये पितु मातु भाई ।
हैं भद्रमूर्ति मन में छल ना विकार,
विद्यादिसागर जजैं निज हो विहार ।।१।।

पा 'ज्ञानसागर' गुरु गरिमा वढ़ाई,
औ ! ज्ञानलक्ष्मि जिनके उर में समाई ।
स्या(त्)वाद से विमल हैं जिनके विचार,
विद्यादिसागर जजैं निज हो विहार ।।२।।

वाणी सुधारस सदा सवको पिलाते,
अज्ञान, भेद, मत-संशय को मिटाते ।
ऐसे जिनेन्द्र लघु हैं जग में प्रचार,
विद्यादिसागर जजैं निज हो विहार ।।३।।

है संघ पूर्ण, जग से परिमुक्त नेता,
ध्यानादि लीन तप इन्द्रिय के विजेता ।
देवादि क्या मनुज नाग किया सुप्यार,
विद्यादिसागर जजे निज हो विहार ।।४।।

हैं धर्ममूर्ति अनुकूल चतुर्थ काल,
ले भव्य पाद-रज से उर मुक्तिमाल ।
हो 'सन्मति', मुनि वनूं मन का विचार,
विद्यादिसागर जजै निज हो विहार ।।५।।

–क्षु. सन्मतिसागर



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

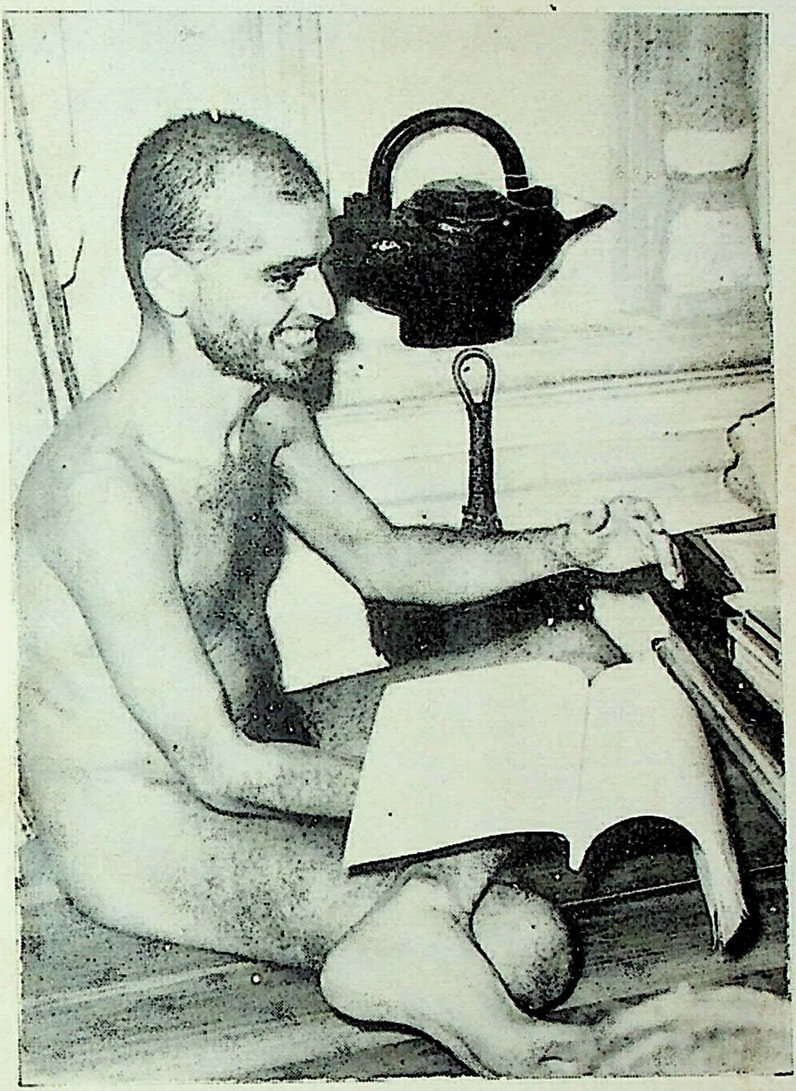

श्री १०८ पूज्यवर आचार्य विद्यासागरजी महाराज

समणसुत्तं/पद्यानुवाद/१६७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# समणसुत्तं

## पद्यानुवाद

प्रथम खण्ड

## ज्योतिर्मुख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# समणसुत्तं का पद्यानुवाद

## मंगलसूत्र

वसन्ततिलका

१. णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

२. एसो पंचणमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥२॥

३. अरहंता मंगलं । सिद्धा मंगलं । साहू मंगलं ।
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥३॥

४. अरहंता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा ।
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥४॥

५. अरहंते सरणं पव्वज्जामि । सिद्धे सरणं पव्वज्जामि ।
साहू सरणं पव्वज्जामि ।
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ॥५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# समणसुत्तं का पद्यानुवाद

## मंगलसूत्र

### वसन्ततिलका

हे शान्त सन्त अरहन्त अनन्त ज्ञाता,
हे शुद्ध बुद्ध शिव सिद्ध अवद्ध धाता।
आचार्य वर्य उवझाय सुसाधु सिन्धु,
मैं वार-वार तुम पाद पयोज बंदूं ॥१॥

हैं मूलमन्त्र नवकार सुखी वनाता,
जो भी पढ़े विनय से अघ को मिटाता।
है आद्य मंगल यही सब मंगलों में,
ध्याओ इसे न भटको जग-जंगलों में ॥२॥

सर्वज्ञदेव अरहन्त परोपकारी,
श्री सिद्ध वन्द्य परमातम निर्विकारी।
श्री केवली कथित आगम साधु प्यारे,
ये चार मंगल, अमंगल को निवारे ॥३॥

श्री वीतराग अरहन्त कुकर्मनाशी,
श्री सिद्ध शाश्वत सुखी शिवधामवासी।
श्री केवली कथित आगम साधु प्यारे,
ये चार उत्तम, अनुत्तम शेष सारे ॥४॥

ये वाल भानु सम हैं अरहन्त स्वामी,
लोकाग्र में स्थित सदाशिव सिद्ध नामी।
श्री केवली कथित आगम साधु प्यारे,
ये चार ही शरण हैं जग में हमारे ॥५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. झायहि पंच वि गुरवे, मंगलचउसरणलोयपरियरिए ।
णर-सुर-खेयर-महिए, आराहणणायगे वीरे ।।६।।

७. घणघाइकम्ममहणा, तिहुवणवरभव्व-कमलमत्तंडा ।
अरिहा अणंतणाणी, अणुवमसोक्खा जयंतु जए ।।७।।

८. अट्ठविहकम्मवियला, णिट्ठियकज्जा पणट्ठसंसारा ।
दिट्ठसयलत्थसारा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।८।।

९. पंचमहव्वयतुंगा, तक्कालिय-सपरसमय-सुदधारा ।
णाणागुणगणभरिया, आइरिया मम पसीदंतु ।।९।।

१०. अण्णाणघोरतिमिरे, दुरंततीरम्हि हिंडमाणाणं ।
भवियाणुज्जोययरा, उवज्झाया वरमदिं देंतु ।।१०।।

११. थिरधरियसीलमाला, ववगयराया जसोहपडिहत्था ।
बहुविणयभूसियंगा सुहाइं साहू पयच्छंतु ।।११।।

१२. अरिहंता, असरीरा, आयरिया, उवज्झया मुणिणो ।
पंचक्खरनिप्पण्णो, ओंकारो पंच परमिट्ठी ।।१२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो श्रेष्ठ हैं शरण, मंगल कर्मजेता,
आराध्य हैं परम हैं शिवपंथ नेता।
हैं वन्द्य खेचर, नरों, असुरों, सुरों के,
वे ध्येय, पंच गुरु हों, हम बालकों के ॥६॥

है घातिकर्मदल को जिसने नशाया,
विज्ञान पा सुख अतुल्य अनन्त पाया।
है भानु, भव्यजनकंज विकासते हैं,
शुद्धात्म की विजय ही अरहन्त वे हैं ॥७॥

कर्त्तव्य था कर लिया, कृतकृत्य दृष्टा,
हैं मुक्त कर्मतन से निज द्रव्य स्रष्टा।
हैं दूर भी जनन मृत्यु तथा जरा से,
वे सिद्ध सिद्धिसुख दें मुझको जरा से ॥८॥

ज्ञानी, गुणी मतमतान्तर ज्ञान धारे,
संवाद से सहज वाद-विवाद टारे।
जो पालते परम पाँच महाव्रतों को,
आचार्य वे सुमति दें हम सेवकों को ॥९॥

अज्ञान रूप-तम में भटके फिरे हैं,
संसारि जीव हम हैं दुःख से घिरे हैं।
दो ज्ञान ज्योति उवझाय व्यथा हरो ना !
ज्ञानी बनाकर कृतार्थ हमें करो ना ॥१०॥

अत्यन्त शान्त विनयी समदृष्टि वाले,
शोभें प्रशस्त यश से शशि से उजाले।
हैं वीतराग परमोत्तम शीलवाले,
वे प्राण डालकर साधु मुझे बचा ले ॥११॥

अर्हत् अकाय परमेष्ठि विभूतियों के,
आचार्यवर्य, उवझाय, मुनीश्वरों के।
जो आद्य वर्ण, अ, अ, आ, उ, म को निकालो,
'ओं'कार पूज्य बनता, क्रमशः मिला लो ॥१२॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३. उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥१३॥

१४. सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंत-भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥१४॥

१५. कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥१५॥

१६. चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहियं पयासंता।
सायरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥१६॥

## २. जिनशासन सूत्र

१७. जमल्लीणा, जीवा, तरंति संसारसायरमणंतं।
तं सव्वजीवसरणं, णंददु जिणसासणं सुइरं ॥१॥

१८. जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुह-विरेयणं अमिदभयं।
जरमरणवाहिहरणं, खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥२॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदीश है अजित संभव मोक्ष धाम,
वन्दूं गुणौघ अभिनन्दन हैं ललाम।
सद्भाव से सुमति पद्म सुपार्श्व ध्याऊं,
चन्द्रप्रभु चरण से चिति ना चलाऊं ॥१३॥

श्री पुष्पदन्त शशि-शीतल शील पुंज,
श्रीयांस पूज्य, जगपूजित वासुपूज्य।
आदर्श से विमल, सन्त अनन्त धर्म,
मैं शान्ति को नित नमूँ मिल जाय शर्म ॥१४॥

श्री कुन्थुनाथ अरनाथ सुमल्लि स्वामी,
सद्बोध धाम मुनिसुव्रत विश्व नामी।
आराध्य देव नमि और अरिष्ट नेमी,
श्री "पार्श्व वीर" प्रणमूँ, निज धर्म प्रेमी ॥१५॥

है भानु से अधिक भासुरकान्ति वाले,
निर्दोष है इसलिए शशि से निराले।
गंभीर नीर-निधि से जिन सिद्ध प्यारे,
संसार-सागर सुतीर मुझे उतारें, ॥१६॥

## २. जिन शासन सूत्र

हो के विलीन जिसमें मन मोद पाते,
है भव्य जीव भववारिधि पार जाते।
श्री जैन शासन रहे जयवन्त प्यारा,
भाई वही शरण, जीवन है हमारा ॥१७॥

पीयूष है, विषय-सौख्य विरेचना है,
पीते सुशीघ्र मिटती चिर वेदना है।
भाई जरा मरण रोग विनाशती है,
संजीवनी सुखकरी "जिनभारती" है ॥१८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९. अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोदहिं सिरसा ॥३॥

२०. तस्स मुहुग्गदवयणं, पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं, तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ॥४॥

२१. जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेण ।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी ॥५॥

२२. जय वीयराय ! जयगुरू ! होउ मम तुह पभावओ भयवं ।
भवणिव्वेओ मग्गाणुसारिया इट्ठफल सिद्धी ॥६॥

२३. ससमय-परसमयविऊ, गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो ।
गुणसयकलिओ जुत्तो, पवयणसारं परिकहेउं ॥७॥

२४. जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो ।
तं इच्छ परस्स वि या, एत्तियगं जिणसासणं ॥८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो भी लखा सहज से अरहन्त गाया,
सत् शास्त्र वाद, गणनायक ने वनाया।
पूजूं इसे मिल गया श्रुतबोध सिन्धु,
पी, विन्दु, विन्दु, हरविन्दु समेत वन्दूँ ।।१९।।

प्यारी जिनेन्द्र मुख से निकली सुवाणी,
है दोष की न मिलती जिसमें निशानी।
ओ हो विशुद्ध परमागम है कहाता,
देखो वही सव पदार्थ-यथार्थ-गाथा ।।२०।।

श्रद्धा समेत जिन आगम जो निहारे,
चरित्र भी तदनुसार सदा सुधारे।
संक्लेश भाव तज निर्मल भाव धारे,
संसारि जीवन परीत वनाय सारे ।।२१।।

हे "वीतराग" जगदीश कृपा करो तो,
हे विज्ञ, ज्ञान मुझ वालक में भरो तो।
होऊँ विरक्त तन से शिवमार्गगामी,
मैं केवली विमल निर्मल विश्व नामी ।।२२।।

है ओज तेज झरता मुख से शशी है,
गंभीर, धीर, गुण, आगर है वशी है।
वे ही स्वकीय परकीय सुशास्त्र ज्ञाता,
खोलें जिनागम रहस्य सुयोग्य शास्ता ।।२३।।

जो भी हिताहित यहाँ निज के लिए है,
वे ही सदैव समझो पर के लिए है।
है जैन शासन यही करुणा सिखाता,
सत्ता सभी सदृश्य है सवको दिखाता ।।२४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ३. संघ सूत्र

२५. संघो गुणसंघाओ, संघो य विमोचओ य कम्माणं।
दंसणणाणचरित्ते, संघायंतो हवे संघो ॥१॥

२६. रयणत्तयमेव गणं, गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स।
संघो गुण संघादो, समयो खलु णिम्मलो अप्पा ॥२॥

२७. आसासो वीसासो, सीयघरसमो य होइ मा भाहि।
अम्मापितिसमाणो, संघो सरणं तु सव्वेसिं ॥३॥

२८. नाणस्स होइ भागी, थिरयरओ दंसणे चरित्ते य।
धन्ना गुरुकुलवासं, आवकहाए न मुंचंति ॥४॥

२९. जस्स गुरुम्मि न भत्ती, न य बहुमाणो न गउरवं न भयं।
न वि लज्जा न वि नेहो, गुरुकुलवासेण किं तस्स ? ॥५॥

३०-३१. कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स, सुयरयणदीहनालस्स।
पंचमहव्वयथिरकण्णियस्स, गुणकेसरालस्स ॥६॥

सावगजणमहुयरपरिवुडस्स, जिणसूरतेयबुद्धस्स।
संघपउमस्स भद्दं, समणगणसहस्सपत्तस्स ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ३. संघ सूत्र

है शीघ्र से सकल कर्म कलंक धोता,
ना दोषं धाम वह तो गुण धाम होता।
हो एकमेक जिससे दृग बोध वृत्त,
जानो सभी सतत "संघ" उसे प्रशस्त ॥२५॥

सम्यक्त्व बोध व्रत को 'गण' नित्य मानो,
है 'गच्छ' मोक्ष पथ पै चलना सुजानो।
सत् संघ है गुण जहाँ उभरे हुए हैं,
शुद्धात्म ही समय है, गुरु गा रहे हैं ॥२६॥

आओ यहाँ अभय है भव भीत भाई,
धोखा नहीं, न छल, शीतलता सुहाई।
माता पिता सब समा नहिं भेद नाता,
लो संघ की शरण, सत्य अभेद भाता ॥२७॥

सम्यक्त्व में चरित में अति प्रौढ़ होते,
विज्ञान रूप सर में निज को डुबोते।
जो संघ में रह स्वजीवन को विताते,
वे धन्य हैं सफल जीवन को वनाते ॥२८॥

जो भक्ति भाव रखता गुरु में नहीं है,
लज्जा न नेह भय भी गुरु से नहीं है।
सम्मान गौरव कभी यदि ना करेगा,
ओ व्यर्थ में गुरुकुली बन क्या करेगा? ॥२९॥

भाई अलिप्त सहसा विधि नीर से है,
उत्फुल्ल भी जिनय सूर्यप्रकाश से है।
सागार भव्य अलि आ गुण गा रहे हैं,
गाते जहाँ प्रगुण केसर पी रहे हैं ॥३०॥

भाती जहाँ वह महाव्रत कर्णिका है,
ना नाप भी श्रुतमयी-सुमृपालका है।
घेरे हुए, श्रमणरूप सहस्रपत्र,
ओ "संघ पद्म" जयवन्त रहे पवित्र ॥३१॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ४. निरूपण सूत्र

३२. जो ण पमाणणयेहिं, णिक्खेवेणं णिरिक्खदे अत्थं ।
तस्साजुत्तं जुत्तं, जुत्तमजुत्तं च पडिहादि ।।१।।

३३. णाणं होदि पमाणं, णओ वि णादुस्स हिदयभावत्थो ।
णिक्खेओ वि उवाओ, जुत्तीए अत्थपडिगहणं ।।२।।

३४. णिच्छयववहारणया, मूलभेया णयाण सव्वाणं ।
णिच्छयसाहणहेउं, पज्जयदव्वत्थियं मुणह ।।३।।

३५. जो सिय भेदुवयारं, धम्माणं कुणइ एगवत्थुस्स ।
सो ववहारो भणियो, विवरीओ णिच्छयो होइ ।।४।।

३६. ववहारेणुवदिस्सइ, णाणिस्स चरित्तं दंसणं णाणं ।
ण वि णाणं ण चरित्तं, न दंसणं जाणगो सुद्धो ।।५।।

३७. एवं ववहारणओ, पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयासिदा पुण, मुणिणो पावंति णिव्वाणं ।।६।।

३८. जह ण वि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा उ गाहेउं ।
तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसणमसक्कं ।।७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ४. निरूपण सूत्र

निक्षेप और नय, पूर्ण प्रमाण द्वारा,
ना अर्थ को समझता यदि जो सुचारा।
तो सत्य तथ्य विपरीत प्रतीत होता,
होता असत्य सव सत्य, उसे डुबोता ॥३२॥

निक्षेप है वह उपाय सुजानने का,
होता वही नय निजाशय ज्ञानियों का।
तू ज्ञान को समझ सत्य प्रमाण भाई,
यों युक्तिपूर्वक पदार्थ लखे, भलाई ॥३३॥

दो मूल में नय सुनिश्चित, औ व्यावहार,
विस्तार शेष इनका करता प्रचार।
पर्याय-द्रव्य नय है नय दो नयों में,
होते सहायक सुनिश्चय साधने में ॥३४॥

धारे अनन्त गुण यद्यपि द्रव्य सारे,
तो भी 'सुनिश्चय' अखंड उन्हें निहारे।
पै खंडखंड कर द्रव्य अखंड को भी,
देखे कथंचित यहां "व्यवहार" सो ही ॥३५॥

विज्ञान औ चरित, दर्शन विज्ञ के हैं,
जाते कहे, सकल वे व्यवहार से हैं।
ज्ञानी परन्तु वह ज्ञायक शुद्ध प्यारा,
ऐसा नितान्त नय निश्चय ने निहारा ॥३६॥

है नित्य निश्चय निषेधक, मोक्ष दाता,
होता निषिद्ध व्यवहार नहीं सुहाता।
लेते सुनिश्चय नयाश्रय संत योगी,
निर्वाण प्राप्त करते, तज भोग भोगी ॥३७॥

बोलो न आंग्ल नर से यदि आंग्ल भाषा,
कैसे उसे सदुपदेश मिले प्रकाशा !
सत्यार्थ को न व्यवहार बिना बताया—
जाता सुबोध शिशु में गुरु से जगाया ॥३८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३९. ववहारोऽभूयत्थो, भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।
भूयत्थमस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो ।।८।।

४०. निच्छयमवलंबंता, निच्छयतो निच्छयं अजाणंता ।
नासंति चरणकरणं, बाहिरकरणालसा केई ।।६।।

४१. सुद्धो सुद्धादेसो, णायव्वो परमभावदरिसीहिं ।
ववहारदेसिदा पुण, जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ।।१०।।

४२. निच्छयओ दुण्णेयं, को भावे कम्मि वट्टई समणो ।
ववहारओ य कीरइ, जो पुव्वट्ठिओ चरित्तम्मि ।।११।।

४३. तम्हा सव्वे वि णया, मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।
अन्नोन्नणिस्सिया उण, हवंति सम्मत्तसब्भावा ।।१२।।

४४. कज्जं णाणादीयं, उस्सग्गाववायओ भवे सच्चं ।
तं तह समायरंतो, तं सफलं होइ सव्वं पि ।।१३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूतार्थ शुद्ध नय है निजको दिखाता,
भूतार्थ है न व्यवहार, हमें भुलाता।
भूतार्थ की शरण लेकर जीव होता,
सम्यक्त्व भूषित, सही मन मैल धोता ।।३९।।

जाने नहीं कि वह निश्चय चीज क्या है।
हैं मानते सकल बाह्य क्रिया-वृथा है।
वे मूढ़ नित्य रट निश्चय की लगाते,
चारित्र नष्ट करते, भव को बढ़ाते ।।४०।।

शुद्धात्म में निरत हो जब सन्त त्यागी,
जीवें विशुद्ध नय आश्रय ले विरागी।
शुद्धात्म से च्युत, सराग चरित्र वाले,
भूले न लक्ष्य व्यवहार अभी संभाले ।।४१।।

है कौन से श्रमण के परिणाम कैसे,
कोई पता नहिं बता सकता कि ऐसे।
तल्लीन हो यदि महाव्रत पालने में,
वे वंद्य हैं नित नमूं व्यवहार से मैं ।।४२।।

वे ही मृषा नय, करे पर की उपेक्षा,
एकान्त से स्वयं की रखते अपेक्षा।
सच्चे सदैव नय वे पर की निभा लें,
बोले परस्पर मिलें व गले लगा लें ।।४३।।

"उत्सर्ग मार्ग" निज में निज का विहारा,
शास्त्रादि साधन रखो अपवाद न्यारा।
ज्ञानादि कार्य इनसे बनते सुचारा,
धारो यथोचित इन्हें सुख हो अपारा ।।४४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ५. संसारचक्र सूत्र

४५. अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए ।
किं नाम होज्ज तं, कम्मयं, जेणाऽहं दुग्गइं न गच्छेज्जा ? ॥१॥

४६. खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥२॥

४७. सुट्ठुवि मग्गिज्जंतो, कत्थ वि केलीइ नत्थि जह सारो ।
इंदिअविसएसु तहा, नत्थि सुहं सुट्ठु वि गविट्ठं ॥३॥

४८. नरविबुहेसरसुक्खं, दुक्खं परमत्थओ तयं बिंति ।
परिणामदारुणमसासयं च जं ता अलं तेण ॥४॥

४९. जह कच्छुल्लो कच्छुं, कंडयमाणो दुहं मुणइ सुक्खं ।
मोहाउरा मणुस्सा, तह कामदुहं सुहं बिंति ॥५॥

५०. भोगामिसदोसविसन्ने, हियनिस्सेयसबुद्धिवोच्चत्थे ।
बाले य मन्दिए मूढे, बज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥६॥

५१. जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ, जम्मजरामरणसंभवं दुक्खं ।
न य विसएसु विरज्जई, अहो सुबद्धो कवडगंठी ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ५. संसार चक्र सूत्र

संसार शाश्वत न ही "ध्रुव है न भाई,
पाऊं निरन्तर यहाँ दुख ना भलाई।
तो कौनसी विधि विधान सुयुक्तियाँ रे,
छूटें जिसे कि मम दुर्गति पंक्तियाँ रे॥४५॥

ये भोग काम, मधुलिप्त कृपाण से है,
देते सदा दुख सुमेरु-प्रमाण से है।
संसार पक्ष लखते, सुख के विरोधी,
है पाप धाम, इनसे मिलती न बोधी॥४६॥

भोगे गये विषय ये वहुवार सारे।
पाया न सार इनमें, मनको विदारे।
रे, छान बीन कर लो तुम वार बार,
निस्तार भूत कदली तरु में न सार॥४७॥

प्रारंभ में अमृत सी सुख शान्ति कारी,
दे अन्त में अमित दारुण दुःख भारी।
भूपाल—इन्द्र पदवी सुर सम्पदायें,
छोड़ो इन्हें विषय में दुख आपदायें॥४८॥

ज्यों तीव्र खाज चलती खुजली खुजाते,
रोगी तथापि दुख को सुख ही वताते।
मोहाभिभूत मतिहीन मनुष्य सारे,
त्यों काम जन्य दुख को सुख ही पुकारे॥४९॥

संभोग में निरस्त, सन्मति से परे है,
जो दुख को सुख गिने, भ्रम से परे है।
वे मूढ़ कर्म मल में फंसते तथा हैं,
मक्खी गिरी तड़फती कफ में यथा हैं॥५०॥

हो वेदना जनन मृत्यु तथा जरा से,
ऐसा सभी समझते सहसा सदा से।
तो भी मिटी विषय लोलुपता नहीं हैं,
माया मयी सुदृढ़ गाँठ खुली नहीं है॥५१॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५२-५४. जो खलु संसारत्थो, जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादो कम्मं, कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥८॥

गदिमधिगदस्स देहो, देहादो इंदियाणि जायंते ।
तेहिं दु विसयग्गहणं, तत्तो रागो वा दोसो वा ॥९॥

जायदि जीवस्सवं, भावो संसारचक्कवालम्मि ।
इदि जिणवरेहिं भणिदो, अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥१०॥

५५. जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जंतवो ॥११॥

## ६. कर्म सूत्र

५६. जो जेण पगारेणं, भावो णियओ तमन्नहा जो तु ।
मन्नति करेंति वदंति व, विप्परियासो भवे एसो ॥१॥

५७. जं जं समयं जीवो आविसइ जेण जेण भावेण ।
सो तंमि तंमि समए, सुहासुहं बंधए कम्मं ॥२॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ससारिजीव जितने फिरतेयहाँ हैं,
वे राग रोष करते दिखते सदा हैं।
दुष्टाष्ट कर्म जिससे अनिवार्य पाते,
हैं कर्म के वहन से गति चार पाते ।।५२।।

पाते गती महल देह उन्हें मिलेगी,
वे इन्द्रियां खिड़कियां जिसमें खुलेंगी।
होगा पुनः विषय सेवन इन्द्रियों से,
रागादिभाव फिर हो जग-जन्तुओं से ।।५३।।

मिथ्यात्व के वश अनादि अनन्त मानो,
सम्यक्त्व के वश अनादि सुसान्त जानो।
संसारिजीव इस भांति विभाव धारे,
वे धन्य हैं तज इन्हें शिव को पधारे ।।५४।।

लो जन्म से, नियम से दुख जन्म लेते,
मारो जरा मरण भी अति दुःख देते।
संसार ही ठस ठसा दुख से भरा है,
पीड़ा चराचर सहें सुख ना जरा है ।।५५।।

## ६. कर्म सूत्र

जो भी जहाँ जब जभी जिस भाँति भाता,
विज्ञान में तब तभी उस भांति आता।
जो अन्यथा समझता करता बताता,
कुज्ञान हो वह, सदा सबको सताता ।।५६।।

रागादि भाव करता जब जीव जैसे ?
तो कर्म बन्धन बिना बच जाय कैसे ?
भाई, शुभाशुभ विभाव कुकर्म आते,
है जीव संग बंधते, तब वे सताते ।।५७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५८. कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ, सिसुणागु व्व मट्टियं ॥३॥

५९. न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ, नमित्तवग्गा न सुया न बंधवा ।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं कत्तारमेव अणुजाइ कम्म ॥४॥

६०. कम्मं चिणंति सवसा, तस्सुदयम्मि उ परव्वसा होंति ।
रुक्खं दुरुहइ सवसो, विगलइ स परव्वसो तत्तो ॥५॥

६१. कम्मवसा खलु जीवा, जीववसाइं कहिंचि कम्माइं ।
कत्थइ धणिओ बलवं, धारणिओ कत्थई बलवं ॥६॥

६२. कम्मत्तणेण एक्कं, दव्वं भावो त्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गलपिंडो दव्वं, तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥७॥

६३. जो इंदियादिविजई, भवीय उवओगमप्पगं झादि ।
कम्मेहिं सो ण रंजदि, किह तं पाणा अणुचरंति ॥८॥

६४- नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ॥९॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो काय से वचन से मद मत्त होता,
लक्ष्मी धनार्थ निज जीवन पूर्ण खोता।
त्यों राग रोष वश हो वसु कर्म पाता,
ज्यों सर्प, जो कि द्विमुखी, मृणनित्य खाता।।५८।।

माता पिता सुत सुतादिक साथ देते,
आपत्ति में न सब वे दुख बाँट लेते।
जो भोगता करम को करता अकेला,
औचित्य कर्म बनता उसका सुचेला।।५९।।

है वन्ध के समय जीव स्वतन्त्र होते,
हो कर्म के उदय में परतन्त्र रोते।
जैसे मनुष्य तरु पै चढ़ते अनूठे,
पानी गिरा, गिर गये जब हाथ छूटे।।६०।।

हा! जीव को "सवल" कर्म कभी सताता,
तो कर्म को सहज जीव कभी दवाता।
देता धनी धन अरे! जब निर्धनों को,
होता वली, ऋण ऋणी जब दे धनी को।।६१।।

सामान्य से करम एक, नहीं द्विधा है,
है द्रव्य कर्म जड़, चेतन से जुदा है।
जो कर्म शक्ति अथवा रति-रोष-भाव,
है भाव कर्म जिससे कर लो बचाव।।६२।।

शुद्धोपयोगमय आतम को निहारे
वे साधु इन्द्रिय जयी मन मार डारें।
ना कर्म रेणु उन पै चिपके कदापि,
ना देह धारण करें फिर से अपापी।।६३।।

ना ज्ञान-आवरण से सब जानना हो,
ना दर्शनावरण से सब देखना हो।
है वेदनीय सुख दुःख हमें दिलाता,
है मोहनीय उलटा जग को दिखाता।।६४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६५. नामकम्मं च गोयं च, अंतरायं तहेव य।
एवमेयाइं कम्माइं अट्ठेव उ समासओ ॥१०॥

६६. पड-पडिहार-सि-मज्ज, हड-चित्त-कुलाल-भंडगारीणं।
जह एएसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ॥११॥

## ७. मिथ्यात्व सूत्र

६७. हा! जह मोहियमइणा, सुग्गइमग्गं अजाणमाणेणं।
भीमे भवकंतारे, सुचिरं भमियं भयकरम्मि ॥१॥

६८. मिच्छत्तं वेदंतो जीवो, विवरीयदंसणो होइ।
ण य धम्मं रोचेदि हु, महुरं पि रसं जहा जरिदो ॥२॥

६९. मिच्छत्तपरिणदप्पा, तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो।
जीवं देहं एक्कं, मण्णंतो होदि बहिरप्पा ॥३॥

७०. जो जहवायं न कुणइ, मिच्छादिट्ठी तओ हु को अन्नो।
वड्ढइ य मिच्छत्तं, परस्स संकं जणेमाणो ॥४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ना आयु के उदय में, तन जेल छूटे,
है नाम कर्म रचता, वहुरूप झूठे।
है उच्च-नीच-पददायक गोत्र कर्म,
तो अंतराय वश ना वनता सुकर्म ।।६५।।

संक्षेप से समझ लो तुम अष्ट कर्म,
सद्धर्म से सव सधे शिव-शांति शर्म ।।

होती इन्हीं सम सदा वसु कर्म चाल,
कर्मानुसार समझो, पट द्वार पाल ।
औ खड्ग, मद्य हलि, मौलिक चित्रकार,
है कुम्भकार क्रमशः वसु कोष पाल ।।६६।।

## ७. मिथ्यात्व सूत्र

संमोह से भ्रमित है मन मत्त मेरा,
है दीखता सुख नहीं, परितः अंधेरा ।
स्वामी रुका न अव लौं गति चार फेरा,
मेरा अतः नहिं हुआ शिव में वसेरा ।।६७।।

मिथ्यात्व के उदय से मति भ्रष्ट होती,
ना धर्म कर्म रुचता, मिट जाय ज्योति ।
पीयूष भी परम-पावन पेय-प्याला,
अच्छा लगे न ज्वर में वन जाय हाला ।।६८।।

मिथ्यात्व से भ्रमित पीकर मोह प्याला,
ज्वालामुखी तरह तीव्र कषाय वाला ।
माने न चेतन अचेतन को जुदा जो,
होता नितान्त वहिरातम है मुधाओ ।।६९।।

तत्त्वानुकूल यदि जो चलता नहीं है,
मिथ्यात्व चीज इससे वढ़ कौनसी है ?
कर्त्तव्य मूढ़, पर को वह है वनाता,
मिथ्यात्व को सघन रूप तभी दिलाता ।।७०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ८. रागपरिहार सूत्र

७१. रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाइमरणस्स मूलं, दुक्खं च जाइमरणं वयंति ॥१॥

७२. न वि तं कुणइ अमित्तो, सुट्ठु वि य विराहिओ समत्थो वि।
जं दो वि अनिग्गहिया, करंति रागो य दोसो य ॥२॥

७३. न य संसारम्मि सुहं, जाइजरामरणदुक्खगहियस्स।
जीवस्स अत्थि जम्हा, तम्हा मुक्खो उवादेओ ॥३॥

७४. तं जइ इच्छसि गंतुं, तीरं भवसायरस्स घोरस्स।
तो तवसंजमभंडं, सुविहिय! गिण्हाहि तूरंतो ॥४॥

७५. बहुभयंकरदोसाणं सम्मत्तचरित्तगुणविणासाणं।
न हु वसमागंतव्वं, रागद्दोसाण पावाणं ॥५॥

७६. कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जं काइयं माणसियं च किंचि, तस्संतगं गच्छइ वीयरागो ॥६॥

७७. जेण विरागो जायइ, तं तं सव्वायरेण करणिज्जं।
मुच्चइ हु ससंवेगी, अणंतवो होइ असंवेगी ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ८. रागपरिहार सूत्र

है कर्म के विषम बीज सराग रोष,
संमोह से करम हो वहुदोष कोष।
तो कर्म से जनन मृत्यु तथा जरा हो,
ये दुःख मूल इनकी कव निर्जरा हो ? ॥७०॥

हो क्रूर, शूर, मशहूर, जरूर बैरी,
हानी तथापि उससे उतनी न तेरी।
ये राग रोष तुझको जितनी व्यथा दें,
कोई न दें, अव इन्हें दुख दे, मिटा दे ॥७२॥

संसार सागर असार अपार खारा,
संसारिकी सुख यहाँ न मिला लगारा।
प्राप्तव्य है परम पावन मोक्ष प्यारा,
ना जन्म मृत्यु जिसमें सुख का न पारा ॥७३॥

चाहो सुनिश्चय भवोदधि पार जाना,
चाहो नहीं यदि यहाँ अव दुःख पाना।
धोखा न दो स्वयं को टल जाय मौका,
बैठो सुशीघ्र तप-संयम-रूप नौका ॥७४॥

सम्यक्त्वरूप गुण को सहसा मिटाते,
चारित्र रूप पथ से बुध को डिगाते।
ये पाप ताप मय हैं रति-राग रोष,
हो जा सुदूर इन से, मिल जाय तोष ॥७५॥

भोगाभिलाष वश ही वस भोगियों को,
होता असह्य दुःख है सुर मानवों को।
ना साधु मानसिक कायिक दुःख पाते,
वे वीतराग वन जीवन हैं विताते ॥७६॥

वैराग्य भाव जगता जिस भाव से है,
औ कार्य आर्य करते अविलम्व से है।
जो हैं विरक्त तन से भव पर जाते,
आसक्त भोग तन में भवको वढ़ाते ॥७७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७८. एवं ससंकप्पविकप्पणासुं, संजायई समयमुवट्ठियस्स।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥८॥

७९. अन्नं इमं सरीरं, अन्नो जीवु त्ति निच्छियमईओ।
दुक्खपरीकेसकरं, छिंद ममत्तं सरीराओ ॥९॥

८०. कम्मासवदाराइं, निरुंभियव्वाइं इंदियाइं च।
हंतव्वा य कसाया, तिविहं-तिविहेण मुक्खत्थं ॥१०॥

८१. भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥११॥

## ९. धर्म सूत्र

८२. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमस्संति जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

८३. धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥२॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं राग दोष दुख, पै न पदार्थ सारे,
वे बार बार मन में बुध यों विचारें।
तृष्णा अतः विषय की पड़ मंद जाती,
जाती विमोह ममता, समता सुहाती ॥७८॥

मैं शुद्ध चेतन अचेतन से निराला,
ऐसा सदैव कहता सम दृष्टिवाला।
रे! देह नेह करना अति दुःख पाना,
छोड़ो उसे तुम, यही गुरु का वताना ॥७९॥

मोक्षार्थ ही दमन हो सव इन्द्रियों का,
वैराग्य से शमन क्रोध कषायियों का।
हो कर्म आगमन द्वार नितान्त वन्द,
शुद्धात्म को नमन हो, नहिं कर्म वन्ध ॥८०॥

ज्यों शोभता जलज जो जल से निराला,
त्यों वीतराग मुनि भी तन से खुशाला,
होता विरक्त, भव में रहता यही है।
रंगीन में न रचता पचता नहीं है ॥८१॥

## धर्म सूत्र

पाता सदैव तप संयम से प्रशंसा,
औ धर्म मंगलमयी जिसमें अहिंसा।
जो भी उसे विनय से उर में विठाते,
सानन्द देव तक भी उनको पुजाते ॥८२॥

है वस्तु का धरम तो उसका स्वभाव,
सच्ची क्षमादि दशलक्षण धर्म-नाव।
ज्ञानादि रत्नत्रय धर्म, सुखी बनाता,
है विश्व धर्म त्रस थावर प्राणि त्राता ॥८३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८४. उत्तमखममद्दवज्जव–सच्चसउच्चं च संजमं चेव।
तवचागमकिंचण्हं, बम्ह इदि दसविहो धम्मो ॥३॥

८५. कोहेण जो ण तप्पदि, सुर-णर-तिरिएहि कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे, तस्स खमा णिम्मला होदि ॥४॥

८६. खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि ॥५॥

८७. जइ किंचि पमाएणं, न सुट्ठु भे वट्टियं मए पुव्विं।
तं मे खामेमि अहं, निस्सल्लो निक्कसाओ च ॥६॥

८८. कुलरूवजादिबुद्धिसु, तवसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो णवि कुव्वदि समणो, मद्दवधम्मं हवे तस्स ॥७॥

८९. जो अवमाणकरणं, दोसं परिहरइ णिच्चमाउत्तो।
सो णाम होदि माणी, ण दु गुणचत्तेण माणेण ॥८॥

९०. से असइं उच्चागोए असइं नीआगोए, नो हीणे नो अइरित्ते।
नोऽपीहए इति संखाए, के गोयावाई के माणावाई? ॥९॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्यारी क्षमा, मृदुलता ऋजुता सचाई,
औ शौच्य संयम धरो, तप से भलाई।
त्यागो परिग्रह, अकिंचन गीत गालो,
तो ! ब्रह्मचर्यसर में डुबकी लगालो ।।८४।।

हो जाय घोर उपसर्ग नरों सुरों से,
या खेचरों पशुगणों जन दानवों से।
उद्दीप्त हो न उठती यदि क्रोध ज्वाला,
मानो उसे तुम क्षमामृत पेय प्याला ।।८५।।

प्रत्येक काल सबको करता क्षमा मैं,
सारे क्षमा मुझ करे नित माँगता मैं।
मैत्री रहे जगत के प्रति नित्य मेरी,
हो वैर भाव किससे ? जब है न वैरी ।।८६।।

मैंने प्रमाद वश दुःख तुम्हें दिया हो,
किंवा कभी यदि अनादर भी किया हो।
ना शल्य मान मन में रखता मुधा मैं,
हूँ माँगता विनय से तुमसे क्षमा मैं ।।८७।।

हूँ श्रेष्ठ जाति कुल में श्रुत में यशस्वी,
ज्ञानी, सुशील, अतिसुन्दर हूँ तपस्वी ।
ऐसा नहीं श्रमण हो, मन मान लाते,
निर्भ्रान्ति वे परम मार्दव धर्म पाते ।।८८।।

देता न दोष पर को, गुण ढूंढ़ लेता,
निन्दा करे स्वयं की, मन अक्ष जेता ।
मानो वही नियम से गुण धाम ज्ञानी,
कोई कभी गुण बिना बनता न मानी ।।८९।।

सर्वोच्च गोत्र हमने बहु बार पाया,
पा, नीच गोत्र, दुख जीवन है बिताया।
मैं उच्च की इसलिए करता न इच्छा,
स्थाई नहीं क्षणिक चंचल उच्च निच्चा ।।९०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९१. जो चिंतेइ ण वंकं, ण कुणदि वंकं ण जंपदे वंकं ।
ण य गोवदि णियदोसं, अज्जव-धम्मो हवे तस्स ॥१०॥

९२. परसंतावयकारण-वयणं, मोत्तूण सपरहिदवयणं ।
जो वददि भिक्खु तुरियो, तस्स दु धम्मो हवे सच्चं ॥११॥

९३. मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥१२॥

९४. पत्थं हिदयाणिट्ठं पि, भण्णमाणस्स सगणवासिस्स ।
कडुगं व ओसहं तं, महुरविवायं हवइ तस्स ॥१३॥

९५. विस्ससणिज्जो माया व, होइ पुज्जो गुरु व्व लोअस्स ।
सयणु व्व सच्चवाई, पुरिसो सव्वस्स होइ पिओ ॥१४॥

९६. सच्चम्मि वसदि तवो, सच्चम्मि संजमो तह वसे सेसा वि गुणा ।
सच्चं णिबंधणं हि य, गुणाणमुदधीव मच्छाणं ॥१५॥

९७. जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई ।
दोमासकयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं ॥१६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार में वचन में व विचार में भी,
जो धारता कुटिलता नहिं स्वप्न में भी।
योगी वही सहज आर्जव धर्म पाता,
ज्ञानी कदापि निज दोष नहीं छिपाता ।।९१।।

मिश्री मिले, वचन वे रुचते सभी को,
संताप हो श्रवण से न कभी किसी को।
कल्याण हो स्वपर का मुनि बोलता है,
हो सत्य धर्म उसका, दृग खोलता है ।।९२।।

हो चोर चौर करता विषयाभिलाषी,
पाता त्रिकाल दुख हाय असत्य भाषी।
देखो जभी दुखित ही वह है दिखाता,
सत्यावलम्बन सदीव सुखी बनाता ।।९३।।

सार्धर्मि के वचन आज नहीं सुहाते,
है पथ्यरूप, फलतः कटु दीख पाते।
पीते अतीव कड़वी लगती दवाई,
नीरोगता फल मिले, मति मुस्कुराई ।।९४।।

विश्वास पात्र जननी सम सत्यवादी,
हो पूजनीय गुरु सदृश अप्रमादी।
वे विश्व को स्वजन भाँति सदा सुहाते,
वंदूं उन्हें सतत मैं शिर को झुकाते ।।९५।।

ज्ञानादि मौलिक सभी गुण वे अनेकों,
है सत्य में निहित संयम शील देखो।
आवास ज्यों जलधि है जलजीवियों का,
त्यों सत्य धर्म जग में सब सद्गुणों का ।।९६।।

ज्यों ज्यों विकास धन का क्रमशः चलेगा,
त्यों त्यों प्रलोभ बढ़ता, बढ़ता बढ़ेगा।
सम्पन्न कार्य कण से जब जो कि पूरा,
होता वही न मन से रहता अधूरा ।।९७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९८. सुवण्णरुप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया ।।१७।।

९९. जहा य अंडप्पभवा बलागा, अंडं बलागप्पभवं जहा य ।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयंति ।।१८।।

१००. समसंतोसजलेणं, जो धोवदि तिव्व-लोहमल-पुंजं ।
भोयण-गिद्धि-विहीणो, तस्स सउच्चं हवे विमलं ।।१९।।

१०१. वय-समिदि-कसायाणं, दंडाणं तह इंदियाण पंचण्हं ।
धारण-पालण-णिग्गह-चाय-जओ संजमो भणिओ ।।२०।।

१०२. विसयकसाय-विणिग्गहभावं, काऊण झाणसज्झाए ।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण ।।२१।।

१०३. णिव्वेदतियं भावइ, मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु ।
जो तस्स हवे चागो, इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं ।।२२।।

१०४. जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठिकुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चई ।।२३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'सैकड़ों कनक निर्मित पर्वतों को,
होगी न तृप्ति फिर भी तुम लोभियों को।
आकाश है वह अनन्त, अनन्त आशा,
आशा मिटे, सहज हो परितः प्रकाशा ॥९८॥

त्यों मोह से जनम, तामस लोभ का हो,
या लोभ से दुरित कारण, मोह का हो,
ज्यों वृक्षओं, उपजता उस बीज से है,
या बीज जो उपजता इस वृक्ष से है ॥९९॥

सन्तोष धार, समता जल से विरागी,
धोते प्रलोभ-मल को बुध सन्त त्यागी।
लिप्सा नहीं अशन में रखते कदापि,
हो शौच धर्म उनका, तज पाप पापी ॥१००॥

जो पालना समिति, इन्द्रिय जीतना है,
है योग रोध करना, व्रत धारना है।
सारी कषाय तजना मन मारना है,
भाई वही सकल संयम साधना है ॥१०१॥

फोड़ा कषाय घट को, मन को मरोड़ा,
है योगि,ने विषय को विष मान छोड़ा।
स्वाध्याय ध्यान बल से निजको निहारा,
पाया नितान्त उसने तप धर्म प्यारा ॥१०२॥

वैराग्य धार भवभोग शरीर से ओ,
देखा स्व को यदि सुदूर विमोह से हो।
तो त्याग धर्म समझो उनने लिया है,
सन्देश यों जगत को प्रभु ने दिया है ॥१०३॥

भोगोपभोग मिलने पर भी कदापि,
जो भोगता न उनको बनता अपापि।
त्यागी वही नियम से जग में कहाता,
भोगी न भोग तजता, भव योग पाता ॥१०४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०५. होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं ।
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्साऽऽकिंचण्णं ॥२४॥

१०६. अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइओ सदाऽरूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि, अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥२५॥

१०७. सुहं वसामो जीवामो, जेसिं णो नत्थि किंचण ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किंचण ॥२६॥

१०८. चत्तपुत्तकलत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं न विज्जई किंचि, अप्पियं पि न विज्जए ॥२७॥

१०९. जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२८॥

११०. दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥२९॥

१११. जीवो बंभ जीवम्मि, चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो ।
तं जाण बंभचेरं, विमुक्कपरदेहतित्तिस्स ॥३०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो अंतरंग वहिरंग निसंग नंगा,
होता दुखी नहिं सुखी, बस नित्य चंगा।
भाई वही वर अकिंचन धर्म पाता,
पाता स्वकीय सुखको, अघ को खपाता ॥१०५॥

हूँ शुद्ध पूर्ण दृग बोध मयी सुधा से,
मैं एक हूँ पृथक् हूँ सब से सदा से।
मेरा न और कुछ है नित में अरूपी,
मेरी नहीं जड़मयी यह देह रूपी ॥१०६॥

मैं हूँ सुखी रह रहा सुख से अकेला,
मेरा न और कुछ है गुरु भी न चेला।
उद्दीप्त हो यदि जले मिथिला यहाँ रे,
बोले 'जमी' कि उससे मम हानि क्यों रे ॥१०७॥

निस्तार जान जिनने व्यवहार सारा,
छोड़ा, रखा न कुछ भी कुल पुत्र दारा।
ऐसा कहें सतत वे सब सन्त सच्चे,
कोई पदार्थ जग में न बुरे न अच्छे ॥१०८॥

ज्यों पद्म जो जलज हो, जल से निराला,
ओ ना गले, नहि सड़े रहता निहाला।
त्यों भोग में न रचता-पचता नहीं है,
तो पूज्य ब्राह्मण यहाँ जग में वही है ॥१०९॥

ना मोह भाव जिसमें दुःख को मिटाया,
तृष्णा विहीन मुनि, मोहन को नशाया।
तृष्णा विनष्ट उससे यति जो न लोभी,
हो लोभ नष्ट उससे विन संग जो भी ॥११०॥

जो देह नेह तजता निज ध्यान धारी,
है ब्रह्मचर्य उसकी वह वृत्ति सारी।
है जीव ही परम ब्रह्म सदा कहाता,
हूँ वार-वार उसको शिर मैं नवाता ॥१११॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११२. सव्वंगं पेच्छंतो, इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं।
सो बम्हचेरभावं, सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि ।।३१।।

११३. जउकुंभे जोइउवगूढे, आसुभितत्ते नासमुवयाइ।
एवित्थियाहि अणगारा, संवासेण नासमुवयंति ।।३२।।

११४. एए य संगे समइक्कमित्ता, सुदुत्तरा चेव भवंति सेसा।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा ।।३३।।

११५. जह सीलरक्खयाणं, पुरिसाणं णिंदिदाओ महिलाओ।
तह सीलरक्खयाणं, महिलाणं णिंदिदा पुरिसा ।।३४।।

११६. किं पुण गुणसहिदाओ, इत्थीओ अत्थि वित्थडजसाओ।
णरलोगदेवदाओ, देवेहिं वि वंदणिज्जाओ ।।३५।।

११७. तेल्लोक्काडविडहणो, कामग्गी विसयरुक्खपज्जलिओ।
जोव्वणतणिल्लचारी, जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ।।३६।।

११८. जा जा वज्जई रयणी, न सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ।।३७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चद्रानना, मृगदृगी, मृदुहास वाली,
लीलावती, ललितलो ललना निराली।
देखो इन्हें, पर कभी न वनो विकारी,
मानो तभी कि "हम" हैं सव व्रह्मचारी ।।११२।।

संसर्ग पा अनल का झट लाख जैसा,
स्त्री संग से पिघलता अनगार वैसा।
योगी रहे इसलिए उनसे सुदूर,
एकान्त में विपिन में निज में जरूर ।।११३।।

कामेन्द्रि का दमन रे, जिसने किया है,
कोई नहीं अव उसे कठिनाइयाँ हैं।
जो धैर्य से अमित सागर पार पाता,
क्या शीघ्र से न सरिता वह तैर जाता ? ।।११४।।

नारी रहो, नर रहो जब शील धारी,
स्त्री से वचे नर, वचे नर से सुनारी।
स्त्री आग है, पुरुष है नवनीत भाई,
उद्दीप्त एक, पिघले, मिलते बुराई ।।११५।।

होती सुशोभित तथापि सुनारि जाति,
फैली दिगंत तक है जिन—शील-ख्याति।
ये हैं पवित्र धरती पर देवतायें,
पूजें इन्हें नित सुरासुर अपसरायें ।।११६।।

कामाग्नि से जलरहा त्रय लोक सारा,
देखो जहाँ विषय की लपटें अपारा।
वे धन्य हैं यदपि पूर्ण युवा वने हैं,
सत् शील से लस रहे निज में रमे हैं ।।११७।।

जो एक, एक कर रात व्यतीत होती,
आती न लौट , जनता रह जाय रोती।
मोही अधर्मरत है, उसकी निशायें,
जातीं वृथा दु:खद है उलटी दिशायें ।।११८।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११९. जहा य तिण्णि वणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया ।
एगोऽत्थ लहई लाहं, एगो मूलेण आगओ ॥३८॥

१२०. एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ॥३९॥

१२१. अप्पा जाणइ अप्पा, जहट्ठिओ अप्पसक्खिओ धम्मो ।
अप्पा करेइ तं तह, जह अप्पसुहावओ होइ ॥४०॥

## १०. संयम सूत्र

१२२. अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥१॥

१२३. अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥२॥

१२४. एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य ।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ! ॥३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ले द्रव्य को वनिक तीन चले कमानें,
जाके वसे शहर में खुलती दुकानें।
है विज्ञ एक उनमें धन को वढ़ाता,
है एक मूल धन लेकर लौट आता ।।११९।।

ओ मूढ़, मूल धन को जिसने गँवाया,
सारा गया वितथ हाय, किया कराया।
ऐसा हि कार्य अवलौं हम ने किया है?
सद्धर्म पा उचित कार्य कहाँ किया है? ।।१२०।।

आत्मा स्वरूप रत आतम को जनाता,
शुद्धात्म रूप निज साक्षिक धर्म भाता।
आत्मा उसी तरह से उसको निभावे,
शीघ्रातिशीघ्र जिससे सुख पास आवे ।।१२१।।

## १०. संयम सूत्र

आत्मा मदीय दुखदा तरु शालमली है,
दाहात्मिका-विषम-वैतरिणी नदी है।
किंवा सुनंदन वनी मनमोहिनी है,
है काम धेनुसुखदा दुःख हारिणी है ।।१२२।।

आत्मा हि दुःख सुख रूप विभाव कर्त्ता,
होता वही इसलिए उनका प्रभोक्ता।
आत्मा अनात्मरत ही रिपु है हमारा,
तल्लीन हो स्वयं में तव मित्र प्यारा ।।१२३।।

आत्मा मदीय रिपु है वन जाय स्वैरी,
स्वच्छन्द-इन्द्रिय-कषाय-निकाय बैरी।
जीतूँ उन्हें निज नियंत्रण में रखूँ मैं,
धर्मानुसार चल के निज को लखूँ मैं ।।१२४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२५. जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥४॥

१२६. अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥५॥

१२७. अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य ॥६॥

१२८. वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य ॥७॥

१२९. एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥८॥

१३०. रागे दोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे ।
जे भिक्खू रुंभई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥९॥

१३१. नाणेण य झाणेण य, तवोबलेण य बला निरुभंति ।
इंदियविसयकसाया, धरिया तुरगा व रज्जूहिं ॥१०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीते; भले हि रिपु को रण में प्रतापी,
मानो उसे न विजयी, वह विश्वतापी।
रे! शूर-वीर विजयी जग में वही है,
जो जीतता स्वयं को वनता सुखी है ।।१२५।।

जीतो भले हि पर को, पर क्या मिलेगा?
पूछूं तुम्हें दुरित क्या उससे टलेगा?
भाई लड़ो स्वयं से, मत दूसरों से,
छूटो सभी सहज से भव-बंधनों से ।।१२६।।

अत्यन्त ही कठिन जो निज जीतना है,
कर्त्तव्य मान उसको वस साधना है।
जो जी रहा जगत में वन आत्म जेता,
सर्वत्र दिव्य सुख का वह लाभलेता ।।१२७।।

औचित्य है न पर के वध बंधनों से,
मैं हो रहा दमित, जो कि युगों-युगों से।
होगा यही उचित, संयम योग धारूँ,
विश्वास है, स्वयं पे जय शीघ्र पाऊँ ।।१२८।।

हो एक से विरति तो रति एक से हो,
प्रत्येक काल सव कार्य विवेक से हो।
ले लो अभी तुम असंयम से निवृत्ति,
सारे करो सतत संयम में प्रवृत्ति ।।१२९।।

है राग-रोष अघकोष नहीं सुहाते,
ये पाप कर्म, सव से सहसा कराते।
योगी इन्हें तज, जभी निज धाम जाते,
आते न लौट भव में, सुख चैन पाते ।।१३०।।

लो, ज्ञान ध्यान तप संयम साधनों को,
हे 'साधु' इन्द्रिय–कषाय–निकाय रोको।
घोड़ा कदापि रुकता न विना लगाम,
ज्यों ही लगाम लगता बनता गुलाम ।।१३१।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३२. उवसामं पुवणीता, गुणमहता जिणचरित्तसरिसं पि ।
पडिवातेंति कसाया, किं पुण सेसे सरागत्थे ॥११॥

१३३. इह उवसंतकसाओ, लहइ अणंतं पुणो वि पडिवायं ।
न हु भे वीससियव्वं, थेवे वि कसायसेसम्मि ॥१२॥

१३४. अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं कसायथोवं च ।
न हु भे वीससियव्वं, थोवं पि हु तं बहु होइ ॥१३॥

१३५. कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो ॥१४॥

१३६. उवसमेण हणे कोहं माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चऽज्जवभावेण लोभं संतोसओ जिणे ॥१५॥

१३७. जहा कुम्मे सअंगाई, सए देहे समाहरे ।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥१६॥

१३८. से जाणमजाणं वा, कट्टुं आहम्मिअं पयं ।
संवरे खिप्पमप्पाणं, बीयं तं न समायरे ॥१७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरित्र में जिन समान बनें उजाले,
वे वीतराग, उपशान्त कषाय वाले।
नीचे, कषाय उनको जब है गिराती,
जो है सराग, फिर क्या न उन्हें नचाती? ॥१३२॥

हा! साधु भी समुपशान्त कषाय वाला,
होता कषाय वश मंद विशुद्धि वाला।
विश्वास-भाजन कषाय अतः नहीं है,
जो आ रही उदय में अथवा दबी है ॥१३३॥

थोड़ा रहा ऋण, रहा व्रण मात्र छोटा,
है राग, आग लघु यों कहना हि खोटा।
विश्वास क्योंकि इनपे रखना बुरा है,
देते सुशीघ्र बढ़के दुःख मर्मरा है ॥१३४॥

ना क्रोध के निकट "प्रेम" कदापि जाता,
है मान से विनय शीघ्र विनाश पाता।
माया विनष्ट करती जग मित्रता को,
आशा विनष्ट करती सब सभ्यता को ॥१३५॥

क्रोधाग्नि का शमन शीघ्र करो क्षमा से,
रे! मान मर्दन करो तुम नम्रता से।
धारो विशुद्ध ऋजुता मिट जाय माया,
संतोष में रति करो, तज लोभ जाया ॥१३६॥

ज्यों देह में सकल अंग उपांगकों को;
लेता समेट कछुआ, लख संकटों को।
मेधाविलोग अपनी सब इन्द्रियों को,
लेते समेट निज में भजते गुणों को ॥१३७॥

अज्ञान मान वश भी कुछ ना दिखाई,
मानो, अनर्थ घटना घट जाय भाई।
सद्यः उसी समय ही उसको मिटाओ,
आगे कदापि फिर ना तुम भूल पाओ ॥१३८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३९. धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मासारही ।
धम्मारामरए दंते, बम्भचेरसमाहिए ॥१८॥

## ११. अपरिग्रह सूत्र

१४०. संगनिमित्तं मारइ, भणइ अलीअं करेइ चोरिक्कं ।
सेवइ मेहुण मुच्छं, अप्परिमाणं कुणइ जीवो ॥१॥

१४१. चित्तमंतमचित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि ।
अन्नं वा अणुजाणाइ, एवं दुक्खा ण मुच्चई ॥२॥

१४२. जे ममाइय मतिं जहाति, से जहाति ममाइयं ।
से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स नत्थि ममाइयं ॥३॥

१४३. मिच्छत्तवेदरागा, तहेव हासादिया य छद्दोसा ।
चत्तारि तह कसाया, चउदस अब्भंतरा गंथा ॥४॥

१४४. बाहिरसंगा खेत्तं, वत्थु धणधन्नकुप्पभांडाणि ।
दुपयचउप्पय जाणाणि, केव सयणासणे य तहा ॥५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो धीर धर्मरथ को रुचि से चलाता,
है ब्रह्मचर्य सर में डुवकी लगाता।
आराम-धर्ममय जो जिसको सुहाता,
धर्मानुकूल विचरे मुनि मोद पाता ॥१३९॥

## ११. अपरिग्रह सूत्र

जो भी परिग्रह रखें विषयाभिलाषी,
वे चोर हिंसक कुशील असत्यभाषी।
संसार को "जड़" परिग्रह को वताया,
यों संग को जिनप ने मन से हटाया ॥१४०॥

जो मूढ़ ले परम संयम से उदासी,
धारे धनादिक परिग्रह दास दासी।
अत्यन्त दुःख सहता भव में डुलेगा,
तो मुक्तिद्वार अवरुद्ध नहीं खुलेगा ॥१४१॥

जो चित्त से जव परिग्रह को हटाता,
है ब्रह्म के सव परिग्रह को मिटाता।
है वीतराग समधी अपरिग्रही है,
देखा स्वकीय पथ को मुनि ने सही है ॥१४२॥

मिथ्यात्व, वेदत्रय, हास्य विनाशकारी,
ग्लानी रति, अरति शोक, कुभीति भारी।
ये नोकषाय, नव, चार कषायियाँ हैं,
यों भीतरी जहर चौदह ग्रंथियाँ हैं ॥१४३॥

ये खेत, धाम, धन धान्य अपार राशि,
शय्या, विमान; पशु, वर्तन दासदासी।
नाना प्रकार पट, आसन पंक्तियाँ रे।
ये वाहरी जड़मयी दस ग्रंथियाँ रे ॥१४४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४५. सव्वगंथविमुक्को, सीईभूओ पसंतचित्तो अ ।
जं पावइ मुत्तिसुहं, न चक्कवट्टी वि तं लहइ ।।६।।

१४६. गंथच्चाओ इंदिय-णिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स ।
णयरस्स खाइया वि य, इंदियगुत्ती असंगत्तं ।।७।।

## १२. अहिंसा सूत्र

१४७. एयं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ कंचण ।
अहिंसासमयं चेव, एतावंते वियाणिया ।।१।।

१४८. सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ।।२।।

१४९. जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाणं वा, ण हणे णो वि घायए ।।३।।

१५०. जह ते न पिअं दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं ।
सव्वायरमुवउत्तो, अत्तोवम्मेण कुणसु दयं ।।४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यन्त शान्त गत क्लान्त नितान्त चंगा,
हो अंतरंग, वहिरंग, निसंग नंगा।
होता सुखी सतत है जिस भाँति योगी,
चक्री कहाँ वह सुखी उस भाँति भोगी ।।१४५।।

ज्यों नाग अंकुश विना वश में न आता,
खाई विना नगर रक्षण हो न पाता।
त्यों संग त्याग विन ही, सव इन्द्रियाँ रे,
आती कभी न वश में, तज ग्रंथियाँ रे ।।१४६।।

## १२. अहिंसा सूत्र

ज्ञानी तभी तुम सभी सहसा वनोगे,
संपूर्ण प्राणिवध को जव छोड़ दोगे।
है साम्य धर्म वह है जिसमें न हिंसा,
विज्ञान संभव कभी न, विना अहिंसा ।।१४७।।

है चाहते जवकि ये जग जीव जीना,
होगा अभीष्ट किसको फिर मृत्यु पाना ?
यों जान, प्राणिवध को मुनि शीघ्र त्यागे,
निर्ग्रन्थरूप धरके, दिन-रात जागे ।।१४८।।

हे जीव! जीव जितने जग जी रहे हैं,
विख्यात वे सव चराचर नाम से हैं।
निर्ग्रन्थ साधु वन, जान अजान में ये,
मारे कभी न उनको, न कभी मरायें ।।१४९।।

जैसा तुम्हें दुःख कदापि नहीं सुहाता,
वैसा अभीष्ट परको दुःख हो न पाता।
जानो उन्हें निज समान, दया दिखाओ,
सम्मान मान उनको मन से दिलाओ ।।१५०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५१. जीववहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ ।
ता सव्वजीवहिंसा, परिचत्ता अत्तकामेहिं ॥५॥

१५२. तुमं सि नाम स चेव, जं हंतव्वं ति मन्नसि ।
तुमं सि नाम स चेव, जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि ॥६॥

१५३. रागादीणमणुप्पाओ, अहिंसकत्तं त्ति देसियं समए ।
तेसिं चे उप्पत्ती, हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा ॥७॥

१५४. अज्झवसिएण बंधो, सत्ते मारेज्ज मा थ मारेज्ज ।
एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥८॥

१५५. हिंसादो अविरमणं, वहपरिणामो य होइ हिंसा हु ।
तम्हा पमत्तजोगो, पाणव्ववरोवओ णिच्चं ॥९॥

१५६. णाणी कम्मस्स खयत्थ-मुट्ठिदो णोट्ठिदो य हिंसाए ।
अददि असढं अहिंसत्थं, अप्पमत्तो अवधगो सो ॥१०॥

१५७. अत्ता चेव अहिंसा, अत्ता हिंसति णिच्छओ समए ।
जो होदि अप्पमत्तो, अहिंसगो हिंसगो इदरो ॥११॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो अन्य जीव वध है वध ओ निजी है,
भाई यही परदया, स्वदया रही है।
साधू स्वकीय हित को जब चाहते हैं,
वे सर्व जीव वध निश्चित त्यागते हैं ।।१५१।।

तू है जिसे समझता वध योग्य वैरी,
तू ही रहा "वह" अरे ! यह भूल तेरी।
तू नित्य सेवक जिसे बस मानता है,
तू ही रहा "वह" जिसे नहिं जानता है ।।१५२।।

रागादि भाव उठना वह भाव हिंसा,
होना अभाव उनका समझो अहिंसा।
त्रैलोक्य पूज्य जिन ने हम को बताया ?
कर्त्तव्य मान निज कार्य किया कराया ।।१५३।।

कोई मरो मत मरो, नहिं बंध नाता,
रागादि भाव वश ही द्रुत कर्म आता।
शास्त्रानुसार नय निश्चय नित्य गाता,
यो कर्म-बन्ध विधि है, हमको बताता ।।१५४।।

है एक हिंसक तथैक असंयमी है,
कोई न भेद उनमें कहते यमी है।
हिंसा निरंतर नितान्त बनी रहेगी,
भाई जहाँ जब प्रमाद-दशा रहेगी ।।१५५।।

हिंसा नहीं, पर उपास्य बने अहिंसा,
ज्ञानी करें सतत ही जिस की प्रशंसा।
ले लक्ष कर्मक्षय का बन सत्यवादी,
होता अहिंसक वही मुनि अप्रमादी ।।१५६।।

हिंसा मदीय यह आतम ही अहिंसा,
सिद्धान्त के वचन ये कर लो प्रशंसा।
ज्ञानी अहिंसक वही मुनि अप्रमादी,
हाँ सिंह से अधिक हिंसक हो प्रमादी ।।१५७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५८. तुंगं न मंदराओ, रागासाओ विसालयं नत्थि ।
जह तह जयंमि जाणसु, धम्ममहिंसासमं नत्थि ॥१२॥

१५९. अभयं पत्थिवा ! तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥१३॥

## १३. अप्रमाद सूत्र

१६०. इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्चं इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाए ? ॥१॥

१६१. सीतंति सुवंताणं, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था ।
तम्हा जागरमाणा, विधुणध पोराणयं कम्मं ॥२॥

१६२. जागरिया धम्मीणं, अहम्मीणं च सुत्तया सेया ।
वच्छाहिवभगिणीए, अकहिंसु जिणो जयंतीए ॥३॥

१६३. सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी, न वीससे पण्डिए आसुपण्णे ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंड-पक्खी व चरेऽप्पमत्तो ॥४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तुंग मेरु गिरि सा गिरि कौन सा है ?
निस्सीम कौन जगमें इस व्योम-सा है ?
कोई नहीं परम धर्म विना अहिंसा,
धारो इसे विनय से तज सर्व हिंसा ॥१५८॥

देता तुझे अभय पार्थिव शिष्य प्यारा,
तू भी सदा अभय के जगको सहारा।
क्या मान तू कर रहा दिन रैन हिंसा,
संसार तो क्षणिक है भज ले अहिंसा ॥१५९॥

## १३. अप्रमाद सूत्र

पाया इसे न अवलौं इसको न पाना,
मैंने इसे कर लिया, न इसे कराना।
ऐसा प्रमाद करते नहिं सोचना है,
आ जाय काल कब ओ नहिं सूचना है ॥१६०॥

संसार में कुछ न सार असार सारे,
है सारभूत समता दिक्-द्रव्य प्यारे।
सोये हुए पुरुष ये वस सर्व खोते,
जो जागते सह जिसे विधि पंक धोते ॥१६१॥

सोना हि उत्तम अधार्मिक दुर्जनों का,
है श्रेष्ठ 'जागरण' धार्मिक सज्जनों का।
यों वत्स देश नृप की अनुजा 'जयन्ती',
वाणी सुनी जिनप की वह शीलवन्ती ॥१६२॥

सोया हुआ जगत में वुध नित्य जागे,
जोगे प्रबोध उर में सब पाप त्यागे।
है काल 'काल' तन निर्वल ना विवाद,
भारण्ड से तुम अतः तज दो प्रमाद ॥१६३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६४. पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहाऽवरं ।
नब्भावादेसओ वावि, बालं पंडियमेव वा ।।५।।

१६५. न कम्मुणा कम्म खवेंति वाला, अकम्मुणा कम्म खवेंति धीरा ।
मेधाविणो लोभमया वतीता, संतोसिणो नो पकरेंति पावं ।।६।।

१६६. सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं ।।७।।

१६७. नाऽऽलस्सेण समं सुक्खं, न विज्जा सह निद्दया ।
न वेरग्गं ममत्तेणं, नारंभेण दयालुया ।।८।।

१६८. जागरह नरा ! णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढते बुद्धी ।
जो सुवति ण सो धन्नो, जो जग्गति सो सया धन्नो ।।९।।

१६९. आदाणे णिक्खेवे, वोसिरणे ठाणगमणसयणेसु ।
सव्वत्थ अप्पमत्तो, दयावरो होदु हु अहिंसओ ।।१०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धाता अनेकविध आस्रव का प्रमाद,
लाता सहर्ष वर संवर अप्रमाद।
ना हो प्रमाद तव पण्डित मोह-जेता,
होता प्रमाद वश मानव मूढ़ नेता ।।१६४।।

मोही प्रवृत्ति करते नहिं कर्म खोते,
ज्ञानी निवृत्ति गहते, मन मैल धोते।
धीमान धीर धरते, धरते न लोभ,
ना पाप ताप करते, करते न क्षोभ ।।१६५।।

मोही प्रमत्त वनते, भयभीत होते,
खोते स्वकीय पद को दिन रैन रोते।
योगी करे न भय को वन अप्रमत्त,
वे मस्त व्यस्त निज में निज दत्तचित्त ।।१६६।।

मोही ममत्व रखता न विराग होता,
विद्या उसे न मिलती दिन रैन सोता।
कैसे मिले सुख उसे जब आलसी है,
कैसे वने 'सदय' हिंसक तामसी है ।।१६७।।

भाई सदैव यदि जागृत तू रहेगा,
तेरा प्रबोध वढ़ता वढ़ता वढ़ेगा।
वे धन्य हैं सतत जाग्रत जो रहे हैं,
जो सो रहे अधम हैं विष पी रहे हैं ।।१६८।।

है देख, भाल, चलता उठता, उठाता,
शास्त्रादि वस्तु रखता, तन को सुलाता।
है त्यागता मल, चराचर को बचाता,
योगी अहिंसक दयालु वही कहाता ।।१६९।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## १४. शिक्षा सूत्र

१७०. विवत्ती अविणीअस्स, संपत्ती विणीअस्स य।
जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छइ ॥१॥

१७१. अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणाऽलस्सएण य ॥२॥

१७२. अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।
अहस्सिरे सया दंते, न य मम्ममुदाहरे ॥३॥

१७३. नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥४॥

१७४. नाणमेगग्गचित्तो अ, ठिओ अ ठावयई परं।
सुआणि अ अहिज्जित्ता, रओ सुअसमाहिए ॥५॥

१७५. वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई ॥६॥

१७६. जह दीवा दीवसयं, पइप्पए सो य दिप्पए दीवो।
दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवेंति ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## १४. शिक्षा सूत्र

पाते नहीं अविनयी सुख सम्पदायें,
पा ज्ञान गौरव सुखी विनयी सदा ये।
जानो यही अविनयी–विनयी समीक्षा,
ज्ञानी वनो सहज, पाकर उच्च शिक्षा ॥१७०॥

मिथ्याभिमान करना, मन क्रोध लाना,
पाना प्रमाद, तन में कुछ रोग आना।
आलस्यकानुभव, ये जव पंच होते,
शिक्षा मिले न हम वालक सर्व रोते ॥१७१॥

आलस्य हास्य मनरंजन त्याग देना,
होना सुशील, मन-इन्द्रिय जीत लेना।
क्रोधी कभी न वनना, वनना न दोषी,
ना झूलना विषय में न असत्य-पोषी ॥१७२॥

भाई कदापि वनना न रहस्य भेदी,
ऐसा सदैव कहते गुरु आत्मवेदी।
आजाय आठ गुण जीवन में किसी के,
विद्या निवास करती मुख में उसी के ॥१७३॥

सिद्धान्त के मनन से मन-हाथ आता,
विज्ञान भानु उगता, तमको मिटाता।
जो धर्मनिष्ठ वनता, पर को वनाता,
सद्वोधरूप सर में डुवकी लगाता ॥१७४॥

संसार को प्रिय लगे प्रिय बोल बोलो,
सद् ध्यान से तप तपो दृग पूर्ण खोलो।
सिद्धान्त को गुरुकुली वन के पढ़ोगे,
सद्यः सभी श्रुत विशारद जो वनोगे ॥१७५॥

जाज्वल्यमान इक दीपक से अनेकों,
है शीघ्र दीप जलते अयि मित्र देखो।
आचार्य दीप सम है तमको मिटाते,
आलोक-धाम हमको सहसा वनाते ॥१७६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## १५. आत्म सूत्र

१७७. उत्तमगुणाण धामं, सव्वदव्वाण उत्तमं दव्वं ।
तच्चाण परं तच्चं, जीवं जाणेह णिच्छयदो ॥१॥

१७८. जीवा हवंति तिविहा, बहिरप्पा तह य अंतरप्पा य ।
परमप्पा वि य दुविहा, अरहंता तह य सिद्धा य ॥२॥

१७९. अक्खाणि बहिरप्पा, अंतरप्पा हु अप्पसंकप्पो ।
कम्मकलंक-विमुक्को, परमप्पा भण्णए देवो ॥३॥

१८०. ससरीरा अरहंता, केवलणाणेण मुणिय-सयलत्था ।
णाणसरीरा सिद्धा, सव्वुत्तम-सुक्ख-संपत्ता ॥४॥

१८१. आरुहवि अंतरप्पा, बहिरप्पो छंडिऊण तिविहेण ।
झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥५॥

१८२. चउगइभवसंभमणं, जाइजरामरण-रोयसोका य ।
कुलजोणिजीवमग्गण-ठाणा जीवस्स णो संति ॥६॥

१८३. वण्णरसगंधफासा, थीपुंसणवुंसयादि-पज्जाया ।
संठासा संहणणा, सव्वे जीवस्स णो संति ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## १५. आत्म सूत्र

तत्वों, पदार्थ-निचयों, जड़ वस्तुओं में,
है जीव ही परम श्रेष्ठ यहाँ सवों में ।
भाई अनन्त गुण धाम नितान्त प्यारा,
ऐसा सदा समझ, ले उसका सहारा ।।१७७।।

आत्मा वही त्रिविध है वहिरंतरात्मा
आदेय है परम आतम है महात्मा ।
दो भेद हैं परम आतम के सुजानो,
है वीतराग "अरहन्त" सुसिद्ध मानो ।।१७८।।

मैं हूँ शरीरमय ही वहिरात्म गाता,
जो कर्म मुक्त परमातम है कहाता ।
चैतन्य धाम मुझसे, तन है निराला,
यो अन्तरात्म कहता, सम दृष्टिवाला ।।१७९।।

जो जानते जगत को वन निर्विकारी,
सर्वज्ञदेव अरहन्त शरीर धारी ।
वे सिद्ध चेतन-निकेतन में वसे हैं,
सारे अनन्त सुख से सहसा लसे हैं ।।१८०।।

वचकाय से मनस से ऋषि सन्त सारे,
वे हेय जान वहिरात्मपना विसारे ।
हाँ अंतरात्मपन को रुचि से सुधारे,
प्रत्येक काल परमातम को निहारे ।।१८१।।

संसार चंक्रमण ना कुलयोनियाँ हैं,
ना रोग, शोक, गति जाति-विजातियाँ हैं,
ना मार्गना न गुणथानन की दशायें,
शुद्धात्म में जनम मृत्यु जरा न पायें ।।१८२।।

संस्थान, संहनन, ना कुछ ना कलाई,
ना वर्ण स्पर्श, रसगंध विकार भाई ।
ना तीन वेद, नहि भेद, अभेद भाता,
शुद्धात्म में कुछ विशेष नहीं दिखाता ।।१८३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८४. एदे सव्वे भावा, ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु ।
सव्वे सिद्धसहावा, सुद्धणया संसिदी जीवा ।।८।।

१८५. अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।९।।

१८६. णिद्दंडो णिद्दंदो, णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो ।
णीरागो णिद्दोसो, णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा ।।१०।।

१८७. णिग्गंथो णीरागो, णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को ।
णिक्कामो णिक्कोहो, णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ।।११।।

१८८. णवि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो ।
एवं भणंति सुद्धं, णाओ जो सो उ सो चेव ।।१२।।

१८९. णाहं देहो ण मणो, ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण ण कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ।।१३।।

१९०. को णाम भणिज्ज बुहो, णाउं सव्वे पराइए भावे ।
मज्झमिणं ति य वयणं, जाणंतो अप्पयं सुद्धं ।।१४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याय ये विकृतियाँ व्यवहार से है,
जो भी यहाँ दिख रहे जग में तुझे है।
पै सिद्ध के सदृश्य हैं जग जीव सारे,
तू देख शुद्धनय से मद को हटा रे ॥१८४॥

आत्मा सचेतन अरूप अगन्ध प्यारा,
अव्यक्त हैं अरस और अशब्द न्यारा।
आता नहीं पकड़ में अनुमान द्वारा,
संस्थान से विकल है सुख का पिटारा ॥१८५॥

आत्मा मदीय गतदोष अयोग योगी,
निश्चित है निडर है निखिलोपयोगी।
निर्मोह, एक, नित, है सब संग त्यागी,
है देह से रहित, निर्मम, वीतरागी ॥१८६॥

संतोष-कोष, गतरोष, अदोष ज्ञानी,
निःशल्य शाश्वत दिगम्बर है अमानी।
नीराग निर्मद नितान्त प्रशान्त नामी,
आत्मा मदीय, नय निश्चय से अकामी ॥१८७॥

ना अप्रमत्त मम आतम ना प्रमत्त,
है शुद्ध शुद्धनय से मद-मान मुक्त।
ज्ञाता वही सकल ज्ञायक यों बताते,
वे साधु शुद्धनय आश्रय ले सुहाते ॥१८८॥

हूँ ज्ञानवान, मन ना, तन ना, न वाणी,
होऊँ नहीं कारण भी उनका न मानी।
कर्ता न कारक न हूँ अनुमोद-दाता,
धाता स्वकीय गुण का, परसे न नाता ॥१८९॥

स्वामी जिसे स्वपर बोध भला मिला है,
सौभाग्य से दृग-सरोज खुला खिला है।
ओ क्या कदापि पर को अपना कहेगा ?
ज्ञानी न मूढ़ सम दोष कभी करेगा ॥१९०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९१. अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे एए खयं णेमि ॥१५॥

★



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं एक, शुद्धनय से दृग बोध स्वामी,
हूँ शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध अवद्ध नामी।
निर्मोह भाव करता निजलीन होऊँ,
शुद्धोपयोग-जल से विधि पंक धोऊँ ॥१९१॥

## प्रथम खण्ड समाप्त

**दोहा**

"ज्योतिर्मुख" को नित नमूँ छूटे भव-भव-जेल,
सत्ता मुझको मम दिखे ज्योति ज्योति का मेल॥१॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# समणसुत्तं

## द्वितीय खण्ड

## मोक्षमार्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## १६. मोक्षमार्ग सूत्र

१९२. मग्गो मग्गफलं ति य, दुविहं जिणसासणे समक्खादं ।
मग्गो खलु सम्मत्तं मग्गफलं होइ णिव्वाणं ॥१॥

१९३. दंसणणाणचरित्ताणि, मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि ।
साधूहि इदं भणिदं, तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥२॥

१९४. अण्णाणादो णाणी, जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो ।
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं, परसमयरदो हवदि जीवो ॥३॥

१९५. वदसमिदीगुत्तीओ, सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतो वि अभव्वो, अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥४॥

१९६. णिच्छयववहारसरूवं, जो रयणत्तयं ण जाणइ सो ।
जे कीरइ तं मिच्छा-रूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥५॥

१९७. सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणो य फासेदि ।
धम्मं भोगणिमित्तं, ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## १६. मोक्षमार्ग सूत्र

वैराग्य से विमल केवल बोध पाया,
'सन्मार्ग' मार्ग फल को जिन ने बताया।
"सम्यक्त्व मार्ग" जिसका फल मोक्ष न्यारा,
है जैन शासन यही सुख दे अपारा ॥१९२॥

चरित्र बोध दृग है शिवपंथ प्यारा,
ले लो अभी तुम सभी इसका सहारा।
तीनों सराग जब लौं कुल बन्ध नाता,
ये वीतराग बनते, शिव पास आता ॥१९३॥

धर्मानुराग सुख दे, दुःख मेट देता,
ज्ञानी प्रमाद वश यों यदि मान लेता।
अध्यात्म से पतित हो पुनि पुण्य पाता,
होता विलीन पर में, निज को भुलाता ॥१९४॥

भाई ! अभव्य व्रत क्यों न सदा निभा ले,
ले लें भले हि तप, संयम गीत गालें।
और गुप्तियाँ समितियाँ कुल शील पाले,
पाते न बोध दृग ना बनते उजाले ॥१९५॥

जानो न निश्चय तथा व्यवहार धर्म,
बाँधों सभी तुम शुभाशुभ अष्ट कर्म।
सारी क्रिया वितथ हो कुछ भी करो रे,
जन्मो, मरो, भ्रमित हो भव में फिरो रे ॥१९६॥

सद्धर्म धार उसकी करते प्रतीति,
श्रद्धान गाढ़ रखते रुचि और प्रीति।
चाहें अभव्य फिर भी भव भोग पाना,
ना चाहते धरम से विधि को खपाना ॥१९७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९८. सुहपरिणामो पुण्णं, असुहो पाव त्ति भणियमन्नेसु ।
परिणामो णन्नगदो, दुक्खक्खयकारणं समये ।।७।।

१९९. पुण्णं पि जो समिच्छदि, संसारो तेण ईहिदो होदि ।
पुण्णं सुगईहेदुं, पुण्णखएणेव णिव्वाणं ।।८।।

२००. कम्ममसुहं कुसीलं, सुहकम्मं चावि जाण व सुसीलं ।
कह तं होदि सुसीलं, जं संसारं पवेसेदि ।।९।।

२०१. सोवण्णियं पि णियलं, बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं, सुहमसुहं वा कदं कम्मं ।।१०।।

२०२. तम्हा दु कुसीलेहिं य, रायं मा कुणह मा व संसग्गं ।
साहीणो हि विणासो, कुसीलसंसग्गरायेण ।।११।।

२०३. वरं वयतवेहि सग्गो, मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं ।
छायातवट्ठियाणं, पडिवालंताण गुरुभेयं ।।१२।।

२०४. खयरामरमणुय–करंजलि–मालाहिं च संथुया विउला ।
चक्कहररायलच्छी, लब्भई बोही ण भव्वणुआ ।।१३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है पाप जो अशुभ भाव वही तुम्हारा,
है पुण्य सौम्य शुभ भाव सभी विकारा।
है निर्विकार निजभाव नितान्त प्यारा,
हो कर्म नष्ट जिससे, सुख शान्ति धारा ॥१९८॥

जो पुण्य का चयन ही करता रहा है,
संसार को वस अवश्य वढ़ा रहा है।
हो पुण्य से सुगति, पै भव ना मिटेगा,
हो पुण्य भी गलित तो शिव जो मिलेगा ॥१९९॥

मोही कहे कि शुभ भाव सुशील प्यारा,
खोटा बुरा अशुभ भाव कुशील खारा।
संसार के जलधि में जव जो गिराता,
कैसे सुशील शुभ भाव: मुझे न भाता ॥२००॥

दो बेड़ियाँ, कनक की एक लोह की है,
जो एक सी पुरुष को कस वाँवती है।
हाँ! कर्म भी अशुभ या शुभ क्यों न होवे,
त्यों वाँधते नियम से जड़ जीव को वे ॥२०१॥

दोनों शुभाशुभ कुशील, कुशील, त्यागी,
संसर्ग राग इन का तज नित्य जागी।
संसर्ग राग इनका यदि जो रखेगा,
स्वाधीनता विनशती, दुःख ही सहेगा ॥२०२॥

अच्छा व्रतादिक तया सुरसौख्य पाना,
स्वच्छन्दता अति बुरी फिर श्वभ्र जाना।
अत्यन्त अन्तर व्रताव्रत में रहा है,
छाया-सुधूप द्वय में जितना रहा है ॥२०३॥

चक्री वनो सुकृत से, सुरसम्पदायें,
लक्ष्मी मिले, अमित दिव्य विलासतायें।
पै पुण्य से परम पावन प्राण प्यारा,
सम्यक्त्व हाँ! न मिलता सुख का पिटारा ॥२०४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२०५. तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया।
उवेन्ति माणुसं जोणिं, सेदुसंगेऽभिजायए ॥१४॥

२०६. भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं।
पुव्वं विसुद्धसद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ॥१५॥

२०७. चउरंगं* दुल्लह मत्ता, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए ॥१६॥

## १७. रत्नत्रय सूत्र

### (आ) व्यवहार-रत्नत्रय

२०८. धम्मादीसद्दहणं, सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चिट्ठा तवंसि चरिया, ववहारो मोक्खमग्गो त्ति ॥१॥

२०९. नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥२॥

२१०. नाणं चरित्तहीणं, लिंगग्गहणं च दंसणविहीणं।
संजमहीणं च तवं, जो चरइ निरत्थयं तस्स ॥३॥

---

*मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा, वीर्य।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवायुपूर्ण दिवि में कर देव आते,
वे देव से अवनिपे नर योनि पाते।
भोगोपभोग गह, जीवन है विताते,
यों पुण्य का फल हमें गुरु हैं वताते ।।२०५।।

वे भोग, भोग कर भी नहि फूलते हैं,
मक्खी समा विषय में नहिं झूलते हैं।
संस्कार हैं विगत के जिससे सदीव,
आत्मानुचिंतन सुधी करते अतीव ।।२०६।।

पाना मनुष्य भव को जिनदेशना को,
श्रद्धा समेत सुनना तप साधना को।
वे जान दुर्लभ इन्हें वुधलोक सारे,
काटे कुकर्म मुनि हो शिव को पधारें ।।२०७।।

## १७. रत्नत्रय सूत्र

### (आ) व्यवहार रत्नत्रय

तत्वार्थ में रुचि हुई, दृग हो वहीं से,
सज्ज्ञान हो मनन आगम का सही से।
सच्चा तपश्चरण चारित नाम पाता,
है मोक्ष मार्ग व्यवहार यही कहाता ।।२०८।

श्रद्धान लाभ, बुध-दर्शन से लुटाता,
विज्ञान से सब पदार्थन को जनाता।
चरित्र धार विधि आस्रवरोध पाता,
अत्यन्त शुद्ध निजको तप से वनाता ।।२०९।।

निस्सार है चरित के विन, ज्ञान सारा,
सम्यक्त्व के विन, रहा मुनि भेष भारा,
होता न संयम विना तप कार्य कारी,
ज्ञानादि रत्न त्रय है भवदुःखहारी ।।२१०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२११. नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ।।४।।

२१२. हयं नाणं कियाहीणं, हया अण्णाणओ किया ।
पासंतो पगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ ।।५।।

२१३. संजोअसिद्धीइ फलं वयंति, न हु एगचक्केण रहो पयाइ ।
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा, ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा ।।६।।

## (आ) निश्चय-रत्नत्रय

२१४. सम्मद्दंसणणाणं, एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो, भणिदो जो सो समयसारो ।।७।।

२१५. दंसणणाणचरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं ।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि, अप्पाणं चेव णिच्छयदो ।।८।।

२१६. णिच्छयणयेण भणिदो, तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा ।
ण कुणदि किंचि वि अन्नं, ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति ।।९।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विज्ञान का उदय हो दृग के विनाना,
होते न ज्ञान विन मित्र चरित्र नाना।
चारित्र के विन न हो शिवमोक्ष पाना,
तो मोक्ष के विन कहाँ सुख का ठिकाना ?।।२११।।

हाँ ! अज्ञ की सव क्रिया उलटी दिशा है,
भाई क्रिया रहित ज्ञान व्यथा वृथा है।
पंगु लखें अनल को न वचे कदापि,
दौड़े भले हि वह अन्ध जले तथापि ।।२१२।।

विज्ञान संयम मिले, फल हाथ आता,
हो एक चक्र रथ को, चल वो न पाता।
होवे परस्पर सहायक पंगु अन्धा,
दावाग्नि से वच सके कहते जिनंदा ।।२१३।।

## (आ) निश्चय रत्नत्रय सूत्र

संसार में समय सार सुधा-सुधारा,
लेता प्रमाण नय का न कभी सहारा।
होता वही दृगमयी वर बोध-धाम,
मेरे उसे विनय से शतशः प्रणाम ।।२१४।।

साधू चरित्र, दृग बोध समेत पालें,
आत्मा उन्हें समझ, आतम गीत गालें।
ज्ञानी नितान्त निज में निजको निहारे,
वे अन्त में गुण अनन्त अवश्य धारें ।।२१५।।

ज्ञानादि रत्न त्रय में रत लीन होना,
धोना कषाय मल को, वनना सलोना।
स्वीकार करना न करना तजना किसी को,
तू जान मोक्षपथ वास्तव में इसी को ।।२१६।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१७. अप्पा अप्पम्मि रओ, सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं, चरदिह चारित्तमग्गु त्ति ॥१०॥

२१८. आया हु महं नाणे, आया मे दंसणे चरित्ते य।
आया पच्चक्खाणे, आया मे संजमे जोगे ॥११॥

## १८. सम्यग्दर्शन सूत्र

### (अ) व्यवहार-सम्यक्त्व : निश्चय-सम्यक्त्व

२१९. सम्मत्तरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणियं।
तं जाणिज्जइ णिच्छय-ववहारसरूवदोभेयं ॥१॥

२२०. जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो, अप्पा णं हवइ सम्मत्तं ॥२॥

२२१. जं मोणं तं सम्मं, जं सम्मं तमिह होइ मोणं ति।
निच्छयओ इयरस्स उ, सम्मं सम्मत्तहेऊ वि ॥३॥

२२२. सम्मत्तविरहिया णं, सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंता णं।
ण लहंति बोहिलाहं, अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व है वह निजातम लीन आत्मा,
विज्ञान है समझना निजको महात्मा।
आत्मस्थ आतम पवित्र चरित्र होता,
जानो जिनागम यही, अयि भव्य श्रोता ।।२१७।।

आत्मा मदीय यह संयम बोध-धाम,
चारित्र दर्शनमयी लसता ललाम।
है त्यागरूप, सुखकूप, अनूप, भूप,
ना नेत्र का विषय है नित है अरूप ।।२१८।।

## १८. सम्यक् दर्शन सूत्र

### (अ) व्यवहार-सम्यक्त्व निश्चय-सम्यक्त्व

सम्यक्त्व, रत्नत्रय में वर मुख्य नामी,
है मूल, मोक्षतरुका, तज काम कामी।
है एक निश्चय तथा व्यवहार दूजा,
होते द्विभेद, उनकी कर नित्य पूजा ।।२१९।।

तत्त्वार्थ में रुचि भली भवसिन्धु सेतु,
सम्यक्त्व मान उसको व्यवहार से तू।
सम्यक्त्व निश्चयतया निज आतमा ही,
ऐसा जिनेश कहते शिव राहराही ।।२२०।।

कोई न भेद, दृग में मुनि मौन में है,
माने इन्हें सुबुध "एक" यथार्थ में है।
होता अवश्य जब निश्चय का सुहेतु,
सम्यक्त्व मान व्यवहार, सदा उसे तू ।।२२१।।

योगी बनो, अचल मेरु बनो तपस्वी।
वर्षों भले तप करो, वनके यशस्वी।
सम्यक्त्व के बिन नहीं तुम बोधि पाओ,
संसार में भटकते दुःख ही उठाओ ।।२२२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२३. दंसणभट्ठा भट्ठा, दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं ।
सिज्झंति चरियभट्ठा, दंसणभट्ठा ण सिज्झंति ।।५।।

२२४. दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं ।
दंसणविहीण पुरिसो, न लहइ तं इच्छियं लाहं ।।६।।

२२५. सम्मत्तस्स य लंभो, तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लंभो ।
सम्मद्दंसणलंभो, वरं खु तेलोक्कलंभादो ।।७।।

२२६. किं बहुणा भणिएणं, जे सिद्धा णरवरा गए काले ।
सिज्झिहिंति जे वि भविया, तं जाणइ सम्ममाहप्पं ।।८।।

२२७. जह सलिलेण ण लिप्पइ, कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।
तह भावेण ण लिप्पइ, कसायविसएहिं सप्पुरिसो ।।९।।

२२८. उवभोगमिंदियेहिं, दव्वाणमचेदणाणमिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी, तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ।।१०।।

२२९. सेवंतो वि ण सेवइ, असेवमाणो वि सेवगो कोई ।
पगरणचेट्ठा कस्स वि, ण य पायरणो त्ति सो होई ।।११।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे भ्रष्ट हैं पतित, दर्शन भ्रष्ट जो है,
निर्वाण प्राप्त करते न निजात्म को है।
चारित्र भ्रष्ट पुनि चारित ले सिजेंगे,
पै भ्रष्ट दर्शन तया नहि वे सिजेंगे ॥२२३॥

जो भी सुधा दृगमयी रुचि संग पीता,
निर्वाण पा, अमर हो, चिर काल जीता।
मिथ्यात्वरूप मद पान अरे, करेगा,
होगा सुखी न, भव में भ्रमता फिरेगा ॥२२४॥

अत्यन्त श्रेष्ठ, दृग ही जग में सदा से,
माना गया जड़मयी सव संपदा से,
तो मूल्यवान, मणि से कव "कांच" होता?
स्वादिष्ट इष्ट, घृत से कव छाछ होता? ॥२२५॥

होंगे हुए परम आतम हो रहे हैं,
तल्लीन आत्म सुख में नित जो रहे हैं,
सम्यक्त्व का सुफल केवल जो रहा है।
मिथ्यात्व से दुखित हो जग रो रहा है ॥२२६॥

ज्यों शोभता कमलिनी दृगमंजु पत्र,
हो नीर में न सड़ता रहता पवित्र।
त्यों लिप्त हो विषय से न, मुमुक्षु प्यारे,
होते कषाय मल से अति दूर न्यारे ॥२२७॥

धारें विराग दृग हो जिन धर्म पाके,
होते उन्हें विषय, कारण निर्जरा के।
भोगोपभोग करते सव इन्द्रियों से,
साधू सुधी न बंधतें विधि-बंधनों से ॥२२८॥

वे भोग, भोग कर भी बुध हो न भोगी,
भोगे विना जड़ कुधी वन जाय भोगी।
इच्छा विना यदि करें कुछ कार्य त्यागी,
कर्त्ता कथं फिर वनें? उनको विरागी ॥२२९॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२३०. न कामभोगा समयं उवेंति, न यावि भोगा विगइं उवेंति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥१२॥

## (आ) सम्यग्दर्शन-अंग

२३१. निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥१३॥

२३२. सम्मदिट्ठी जीवा, णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का, जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥१४॥

२३३. जो दु ण करेदि कंखं, कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥१५॥

२३४. नो सक्कियमिच्छई न पूयं, नो वि य वन्दणगं कुओ पसंसं ?
से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥१६॥

२३५. खाई-पूया-लाहं, सक्काराइं किमिच्छसे जोई।
इच्छसि जइ परलोयं, तेहिं किं तुज्झ परलोये ॥१७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे काम भोग न तुम्हें समता दिलाते,
भाई विकार तुम में न कभी जगाते।
चाहो इन्हें, यदि डरो, इनसे जभी से,
पाओ अतीव दुःख को सहसा तभी से ॥२३०॥

## (आ) सम्यग्दर्शन अंग

ये अष्ट अंग दृग के, विनिशंकिता है,
निःकांक्षिता विमल निर्विचिकित्सिता है।
चौथा अमूढ़पन है उपगूहना को,
धारो 'स्थितिकरण वत्सल' भावना को ॥२३१॥

निःशंक हो निडर हो सम-दृष्टि वाले,
सातों प्रकार भय छोड़ स्वगीत गाले।
निःशंकिता अभयता इक साथ होती,
है भीति ही स्वयम् हो भयभीत रोती ॥२३२॥

कांक्षा कभी न रखता जड़ पर्ययों में,
धर्मो-पदार्थ दल के विधि के फलों में।
होता वही मुनि निकांक्षित अंगधारी,
वन्दूं उन्हें बन सकूं द्रुत निर्विकारी ॥२३३॥

सम्मान पूजन न वंदन जो न चाहें,
ओ क्या कभी श्रमण हो निज ख्याति चाहें?
हो संयमी यति व्रती निज आत्म खोजी,
हो भिक्षु तापस वही उसको नमोजी ॥२३४॥

हे 'योगियो' यदि भवोदधि पार जाना,
चाहो अलौकिक अपार स्वसौख्य पाना।
क्यों ख्याति लाभ निज पूजन चाहते हो?
.यों मोक्ष लाभ उनसे तुम मानते हो? ॥२३५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२३६. जो ण करेदि जुगुप्पं, चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥१८॥

२३७. जो हवइ असम्मूढो, चेदा सद्दिट्ठी सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥१९॥

२३८. नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेणं तहेव य ।
खन्तीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ॥२०॥

२३९. णो छादए णोऽवि य लूसएज्जा, माणं ण सेवेज्ज पगासणं च ।
ण यावि पण्णे परिहास कुज्जा, ण याऽऽसियावाद वियागरेज्जा ॥२१॥

२४०. जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं, काएण वाया अदु माणसेणं ।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा, आइन्नओ खिप्पमिवक्खलीणं ॥२२॥

२४१. तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२३॥

२४२. जो धम्मिएसु भत्तो, अणुचरणं कुणदि परससद्धाए ।
पियवयणं जंपंतो, वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ॥२४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई घृणास्पद नहीं जग में पदार्थ,
सारे सदा परिणमे निज में यथार्थ।
ज्ञानी न ग्लानि करते फलतः किसी से,
धारें तृतीय दृग अंग तभी खुशी से ॥२३६॥

ना मुग्ध, मूढ़ मुनि हो जग वस्तुओं में,
हो लीन आप अपने अपने गुणों में।
वे ही महान समदृष्टि अमूढ़ दृष्टि,
नासाग्र–दृष्टि रख, नाशत कर्म सृष्टि ॥२३७॥

चारित्र बोध दृग से निज को सजाओ,
धारो क्षमा, तप तपो विधि को खपाओ।
माया-विमोह ममता तज मार मारो,
हो वर्द्धमान, गतमान, प्रमाण धारो ॥२३८॥

शास्त्रार्थ गौण न करो, न उसे छुपाओ,
विज्ञान का मद घमण्ड नहीं दिखाओ।
भाई किसी सुबुध की न हँसी उड़ाओ,
आशीश दो न पर को, पर को भुलाओ ॥२३९॥

ज्यों ही विकार लहरें मन में उठें तो,
तत्काल योग त्रय से उनको समेटो।
औचित्य अश्व जव भी पथ भूलता हो,
ले लो लगाम कर में अनुकूलता हो ॥२४०॥

हे 'भव्य गौतम' भवोदधि तैर पाया,
क्यों व्यर्थ ही रुक गया, तट पास आया।
ले ले छलाँग झट से अव तो धरा पै,
आलस्य छोड़, वरना दुःख ही वहाँ पै ॥२४१॥

श्रद्धा समेत चलते बुध धार्मिकों की,
सेवा सुभक्ति करते उनको गुणों की।
मिश्री मिले वचन जो नित बोलते हैं,
वात्सल्य अंग धरते, दृग खोलते हैं ॥२४२॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४३. धम्मकहाकहणेण य, बाहिरजोगेहिं चावि अणवज्जे ।
धम्मो पहाविदव्वो, जीवेसु दयाणुकंपाए ॥२५॥

२४४. पावयणी धम्मकही, वाई नेमित्तिओ तवस्सी य ।
विज्जा सिद्धो य कवी, अट्ठेव पभावगा भणिया ॥२६॥

## १९. सम्यग्ज्ञान सूत्र

२४५. सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणए सोच्चा, जं छेयं तं समायरे ॥१॥

२४६. णाणाऽऽणत्तीए पुणो, दंसणतवनियमसंजमे ठिच्चा ।
विहरइ विसुज्झमाणो, जावज्जीवं पि निक्कंपो ॥२॥

२४७. जह जह सुयमोगाहइ, अइसयरसपसरसंजुयमपुव्वं ।
तह तह पल्हाइ मुणी, नवनवसंवेगसद्धाओ ॥३॥

२४८. सूई जहा ससुत्ता, न नस्सई कयवरम्मि पडिआ वि ।
जीवो वि तह ससुत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारे ॥४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योगी, सुयोग रत हो गिरि हो अकम्पा,
धारो सदैव उर जीव दया अनुकम्पा ।
धर्मोपदेश नित दो तज वासना दो,
ऐसा करो कि जिन धर्म प्रभावना हो ।।२४३।।

वादी सुतापस निमित्त सुशास्त्रस्त्र ज्ञाता,
श्री सिद्धिमान, वृष के उपदेश दाता ।
विद्या विशारद, कवीश विशेष वक्ता,
होता प्रचार इनसे वृषका महत्ता ।।२४४।।

## १८. सम्यक् ज्ञान सूत्र

संत्शास्त्र को सुन, हिताहित बोध पाओ,
आदेय हेय समझो, सुख चूँकि चाहो ।
आदेय को झट भजो, तज हेय भाई,
इत्थन हो कुगति से पुनि हो सगाई ।।२४५।।

आदेश, ज्ञान प्रभु का शिव पंथ पंथी,
पाके स्व में विचरते, तज सर्वग्रंथि ।
सम्यक्त्व योग तप संयम ध्यान धारे,
काटें कुकर्म, निज जीवन को सुधारे ।।२४६।।

ज्यों ज्यों श्रुताम्बुनिधि में डुवकी लगाता,
त्यों त्यों व्रती बन नवीन प्रमोद पाता ।
वैराग्य भाव वढ़ता श्रुत भावना हो,
श्रद्धान हो दृढ़, नहीं फिर वासना हो ।।२४७।।

सूची भलेहि कर से गिर भी गई हो,
खोती कभी न, यदि डोर लगी हुई हो ।
साधू ससूत्र यदि हो, श्रुत वोध वाला,
होता विनष्ट भव में न रहे खुशाला ।।२४८।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४९. सम्मत्तरयणभट्ठा, जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।
आराहणाविरहिया, भमंति तत्थेव तत्थेव ॥५॥

२५०. परमाणुमित्तयं पि हु, रायादीणं तु विज्जदे जस्स ।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ॥६॥

२५१. अप्पाणमयाणंतो, अणप्पयं चावि सो अयाणंतो ।
कह होदि सम्मदिट्ठी, जीवाजीवे अयाणंतो ॥७॥

२५२. जेण तच्चं विबुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि ।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ॥८॥

२५३. जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेएसु रज्जदि ।
जेण मित्ती पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ॥९॥

२५४. जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं ।
अपदेससुत्तमज्झं, पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१०॥

२५५. जो अप्पाणं जाणदि, असुइ-सरीरादु तच्चदो भिन्नं ।
जाणग-रूव-सरूवं, सो सत्थं जाणदे सव्वं ॥११॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाई भले तुम वनो बुध मुख्य नेता,
वक्ता कवि विविध वाङ्मय वेद वेत्ता ।
आराधना यदि न-ही दृग की करोगे,
तो बार बार तन धार दुखी वनोगे ।।२४९।।

तू राग को तनिक भी तन में रखेगा,
शुद्धात्म को फिर कदापि न ही लखेगा।
होगा विशारद जिनागम में भले ही,
आत्मा त्वदीय दुःख से भव में रुले ही ।।२५०।।

आत्मा न आतम अनातम को लखेगा,
सम्यक्त्वपात्र किस भाँति अहो वनेगा।
आचार्य देव कहते वन वीत रागी,
क्यों व्यर्थ दुःख सहता, तज राग रागी ।।२५१।।

तत्वाववोध सहसा जिससे जगेगा,
"चाँचल्यचित्त जिससे वश में रहेगा ।
आत्मा विशुद्ध जिससे शशि सा वनेगा,
होता वही विमल 'ज्ञान' स्वसौख्य देगा ।।२५२।।

माहात्म्य ज्ञान गुण का यह मात्र सारा,
रागी, विराग वनता तज राग खारा ।
मैत्री सदैव जग से रखता सुचारा,
शुद्धात्म में विचरता, सुख पा अपारा ।।२५३।।

आत्मा अनन्त, नित, शून्य उपाधियों से,
अत्यन्त भिन्न पर से, विधि वन्धनों से ।
ऐसा निरन्तर निजातम देखते हैं,
वे ही समग्र जिनशासन जानते हैं ।।२५४।।

हूँ काय से विकल, केवल केवली हूँ,
हूँ एक हूँ विमल ज्ञायक हूं वली हूँ।
जो जानता स्वयं को इस भाँति स्वामी,
निर्भ्रान्त हो वह जिनागम पारगामी ।।२५५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५६. सुद्धं तु वियाणंतो, सुद्धं चेवप्पयं लहइ जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं, असुद्धमेवप्पयं लहइ ॥१२॥

२५७. जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ ।
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ ॥१३॥

२५८. जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ ।
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ ॥१४॥

२५९. एदम्हि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।
एदेण होहि तित्तो, होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥१५॥

२६०. जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणादि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥१६॥

२६१. लद्धूणं णिहिं एक्को, तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते ।
तह णाणी णाणणिहिं, भुंजेइ चइत्तु परतत्ति ॥१७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधू समाधिरत हो निज को विशुद्ध,
जाने, वनें सहज शुद्ध अवद्ध बुद्ध।
रागी स्वको समझ राग मयी विचारा,
होता न मुक्त भव से दुःख हो अपारा ।।२५६।।

जो जानते मुनि निजातम को यदा है,
वे जानते नियम से पर को तदा है।
है जानना स्वपर को इक साथ होता,
ऐसा जिनागम रहा, दुःख सर्व खोता ।।२५७।।

जो एक को सहज से मुनि जानते हैं,
वे सर्व को समझते जव जागते हैं।
यों ईश का सदुपदेश सुनो हमेशा,
संक्लेश द्वेष तज शीघ्र वनो महेशा ।।२५८।।

सद्वोध रूप सर में डुवकी लगाले,
संतप्त तू स्नपित हो सुख तृप्ति पाले।
तो अन्त में वल अनन्त ज्वलंत पाके,
विश्राम ले, अमित काल स्वधाम जाके ।।२५९।।

अर्हन्त स्वीय गृह को द्रुत जा रहे हैं,
वे शुद्ध-द्रव्य गुण पर्यय पा रहे हैं।
जो जानता यति उन्हें निज जानता है,
संमोह कर्म उसका झट भागता है ।।२६०।।

ज्यों वित्त वाँट स्वजनों नहिं दूसरों में,
भोगी सुभोग करता दिन रात्रियों में।
पा नित्य-ज्ञान निधि, नित्य नितान्त ज्ञानी,
त्यों हो सुखी, न रमता पर में अमानी ।।२६१।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# २०. सम्यक्चारित्र सूत्र

## (अ) व्यवहारचारित्र

२६२. ववहारणयचरित्ते, ववहारणयस्स होदि तवचरणं ।
णिच्छयणयचारित्ते, तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥१॥

२६३. असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥२॥

२६४. सुयनाणम्मि वि जीवो, वट्टंतो सो न पाउणति मोक्खं ।
जो तवसंजममइए, जोगे न चएइ वोढुं जे ॥३॥

२६५. सक्किरियाविरहातो, इच्छितसंपावयं ण नाणं ति ।
मग्गण्णू वाऽचेट्ठो, वातविहीणोऽधवा पोतो ॥४॥

२६६. सुबहुं पि सुयमहीयं किं काहिइ चरणविप्पहीणस्स ।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्सकोडी वि ॥५॥

२६७. थोवम्मि सिक्खिदे जिणइ, बहुसुदं जो चरित्तसंपुण्णो ।
जो पुण चरित्तहीणो, किं तस्स सुदेण बहुएण ॥६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# २०. सम्यक्चारित्र सूत्र

## (अ) व्यवहार चारित्र

होते सुनिश्चय-नयाश्रित वे अनूप,
चारित्र और तप निश्चय सौख्य कूप ।
पै व्यावहार-नय-आश्रित ना स्वरूप,
चारित्र और तप वे व्यवहार रूप ।।२६२।।

जो त्यागना अशुभ को शुभ को निभाना,
मानो उसे हि व्यवहार चरित्र वाना ।
ये गुप्तियाँ समितियाँ व्रत आदि सारे,
जाते सदैव व्यवहार तया पुकारें ।।२६३।।

चारित्र के मुकुट से शिर ना सजोगे,
आरूढ़ संयममयी रथ पै न होगे ।
स्वाध्याय में रत रहो तुम तो भले ही,
ना मुक्ति मंजिल मिले, दुःख ना टले ही ।।२६४।।

देता क्रियारहित ज्ञान नहीं विराम,
मार्गज्ञ हो यदि चलो, न मिले न धाम ।
किंवा नहीं यदि चले अनुकूल वात,
पाता न पोत तट को वह सत्य वात ।।२६५।।

चारित्र शून्य नर जीवन ही व्यथा है,
तो आगमाध्ययन भी उसकी वृथा है ।
अन्धा कदापि कुछ भी जब न लखेगा,
जाज्वल्यमान कर दीपक क्या करेगा ? ।।२६६।।

अत्यल्प भी वहुत है श्रुत ही उन्हों का,
जो संयमी, सतत ध्यान धरूँ उन्हीं का ।
सागार का वहुत भी श्रुत "बोध" भारा,
चारित्र को न जिसने उस से सुधारा ।।२६७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## (आ) निश्चयचारित्र

२६८. णिच्छयणयस्स एवं, अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो, जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥७॥

२६९. जं जाणिऊण जोई, परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।
तं चारित्तं भणियं, अवियप्पं कम्मरहिएहिं ॥८॥

२७०. जो परदव्वम्मि सुहं, असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो, परचरियचरो हवदि जीवो ॥९॥

२७१. जो सव्वसंगमुक्कोऽणण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं, सो सगचरियं चरदि जीवो ॥१०॥

२७२. परमट्ठम्हि दु अठिदो, जो कुणदि तवं वदं च धारेई।
तं सव्वं बालतवं, बालवदं बिंति सव्वण्हू ॥११॥

२७३. मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए।
न सो सुक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥१२॥

२७४. चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो ॥१३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## (आ) निश्चयचारित्र

आत्मार्थ आतम निजातम में समाता,
सच्चा सुनिश्चय चरित्र वही कहाता।
हे भव्य पावन पवित्र चरित्र पालो,
पालो अपूर्व पद को, निज को दिपालो ॥२६८॥

शुद्धात्म को समझ के परमोपयोगी,
है पाप पुण्य तजता, धर योग योगी।
ओ निर्विकल्प मय चारित्र है कहाता,
मेरे समा विकट भव्यन को सुहाता ॥२६९॥

रागाभिभूत वन तू पर को लखेगा,
भाई शुभाशुभ विभाव खरीद लेगा।
तो वीतराग मय चरित से गिरेगा,
संसार बीच पर चारित से फिरेगा ॥२७०॥

हो अंतरंग वहिरंग निसंग नंगा,
शुद्धात्म में विचरता जव साधु चंगा।
सम्यक्त्व बोधमय आतम देख पाता,
आत्मीय चारित सुधारक ! है कहाता ॥२७१॥

आतापनादि तप से तन को तपाना,
अध्यात्म से स्खलित हो व्रत को निभाना।
हे मित्र ! वाल तप संयम वो कहाता,
ऐसा जिनेश कहते, भव में घुमाता ॥२७२॥

लो, मास मास उपवास करे रुचि से,
अत्यल्प भोजन करे न डरें किसी से।
पै आत्म बोध विन मूढ़ व्रती वनेगा,
ना धर्म लाभ लवलेश उसे मिलेगा ॥२७३॥

चारित्र ही परम धर्म यथार्थ में है,
साधू जिसे शममयी लख साधते हैं।
मोहादि से रहित आतम भाव प्यारा,
माना गया समय में शम साम्य सारा ॥२७४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७५. समदा तह मज्झत्थं, सुद्धो भावो य वीयरायत्तं ।
तह चारित्तं धम्मो, सहावआराहणा भणिया ।।१४।।

२७६. सुविदिदपयत्थसुत्तो, संजमतवसंजुदो विगदरागो ।
समणो समसुहदुक्खो, भणिदो सुद्धोवओओ त्ति. ।।१५।।

२७७. सुद्धस्स य सामण्णं, भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं ।
सुद्धस्स य णिव्वाणं, सो च्चिय सिद्धो णमो तस्स ।।१६।।

२७८. अइसयमादसमुत्थं, विसयातीदं अणोवममणंतं ।
अव्वुच्छिन्नं च सुहं, सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं ।।१७।।

२७९. जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु ।
णाऽऽसवदि सुहं असुहं, समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ।।१८।।

(इ) समन्वय

२८०. णिच्छय सज्झसरूवं, सराय तस्सेव साहणं चरणं ।
तम्हा दो वि य कमसो, पडिच्छमाणं पबुज्झेह ।।१९।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माध्यस्थ भाव समभाव, विराग भाव,
चारित्र धर्ममय भाव, विशुद्ध भाव ।
आराधना स्वयं की पद सात सारे,
है भिन्न भिन्न, पर आशय एक धारें ।।२७५।।

शास्त्रज्ञ हो श्रमण हो समधी तपस्वी,
हो वीतराग व्रत संयम में यशस्वी ।
जो दुःख में व सुख में समता रखेगा,
शुद्धोपयोग उस ही क्षण में लखेगा ।।२७६।।

शुद्धोपयोग दृग है वर बोध-भानु,
निर्वाण, सिद्धि, शिव भी उसको हि जानूं ।
मानूं उसे श्रमणता मन में बिठालूं,
वंदू उसे नित नमूं निज को जगालूं ।।२७७।।

शुद्धोपयोग वश साधु सुसिद्ध होते,
स्वात्मोत्थ सातिशय शाश्वत सौख्य जोते ।
जाती कही न जिसकी महिमा कभी भी,
अन्यत्र छोड़ जिसको सुख ना कहीं भी ।।२७८।।

वे मोह राग-रति-रोष नहीं किसी से,
धारें सुसाम्य सुख में दुःख में रुचि से ।
होके बुभुक्षु नहि, भिक्षु मुमुक्षु होके,
आते हुए सब शुभाशुभ कर्म रोके ।।२७९।।

### (इ) समन्वय

है वीतराग व्रत साध्य सदा सुहाता,
होता सराग व्रत साधन, साध्य दाता ।
तो पूर्व साधन, अनन्तर साध्य धारो,
संपूर्ण बोध मिलता: शिव को पधारो ।।२८०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८१. अब्भंतरसोधीए, बाहिरसोधी वि होदि णियमेण।
अब्भंतर-दोसेण हु, कुणदि णरो बाहिरे दोसे ॥२०॥

२८२. मदमाणमायलोह-विवज्जियभावो दु भावसुद्धि त्ति ।
परिकहियं भव्वाणं, लोयालोयप्पदरिसीहिं ॥२१॥

२८३. चत्ता पावारंभं, समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्हि ।
ण जहदि जदि मोहादी, ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं ॥२२॥

२८४. जह व णिरुद्धं असुहं, सुहेण सुहमवि तहेव सुद्धेण ।
तम्हा एण कमेण य, जोई झाएउ णियआदं ॥२३॥

२८५. निच्छयनयस्स चरणाय-विघाए नाणदंसणवहोऽवि ।
ववहारस्स उ चरणे, हयम्मि भयणा हु सेसाणं ॥२४॥

२८६. सद्धं नगरं किच्चा, तवसंवरमग्गलं ।
खन्ति निउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पघंसयं ॥२५॥

२८७. तवनारायजुत्तेण, भित्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥२६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्यों भीतरी कलुषता मिटती चलेगी,
त्यों वाहरी विमलता वढ़ती वढ़ेगी ।
देही प्रदोष मन में रखता जभी है,
हा ! वाह्यदोष सहसा करता तभी है ।।
रे पंक भीतर सरोवर में रहा है,
जो वाह्य में जल कलंकित हो रहा है ।।२८१।।

मायाभिमान मद मोह विहीन होना,
है भाव शुद्धि, जिससे शिव सिद्धि लोना ।
आलोक से सकल लोक अलोक देखा,
यों वीर ने सदुपदेश दिया सुरेखा ।।२८२।।

जो पाँच पाप तज, पावन पुण्य पाता,
हो दूर भी अशुभ से शुभ को जुटाता ।
रागादि भाव फिर भी यदि न तजेगा,
शुद्धात्म को न मुनि होकर भी भजेगा ।।२८३।।

तो आदि में अशुभ को शुभ से मिटाओ,
शुद्धोपयोग वल से शुभ को हटाओ ।
ऐसा अनुक्रमण से कर कार्य योगी,
ध्याओ निजात्म-जिनको, सुख शांति होगी ।।२८४।।

चारित्र नष्ट, जव हो, दृग बोध पाते,
जाते सुनिश्चय सही रह वे न पाते ।
हो या न हो, विलय पै दृग बोधरक्त रे,
जावे चारित्र, मत यों व्यवहार का रे ।।२८५।।

श्रद्धापुरी सुर पुरी सम जो सजाओ,
ताला वहाँ सुतप संवर का लगाओ ।
पाताल गामिनि क्षमामय खातिका हो,
प्राकार गुप्तिमय हो नभ छू रहा हो ।।२८६।।

औ धैर्य से धनुष-त्यागमयी सुधारो,
सद्ध्यान वाण वल से विधि को विदारो ।
जेता वनो विधि रणांगन के मुनीश,
होवो विमुक्त भव से, जगदीश धीश ।।२८७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# २१. साधना सूत्र

२८८. आहारासण-णिद्दाजयं, च काऊण जिणवरमएण ।
झायव्वो णियअप्पा, णाऊणं गुरुपसाएण ।।१।।

२८९. नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अण्णाणमोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ।।२।।

२९०. तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा, विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।
सज्झायएगंतनिवेसणा य, सुत्तत्थ संचिंतणया धिई य ।।३।।

२९१. आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं, सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धिं ।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग्गं समाहिकामे समणे तवस्सी ।।४।।

२९२. हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा ।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा ।।५।।

२९३. रसा पगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणं ।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी ।।६।।

२९४. बिवत्तसेज्जाऽऽसणजंतियाणं, ओमाऽसणाणं दमिइंदियाणं ।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं पराइओ वाहिरिवोसहेहिं ।।७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## २१. साधना सूत्र

उद्बोध प्राप्त करलो गुरु गीत गालो,
जीतो क्षुधा विषय से मन को बचालो।
निद्राजयी वन दृढ़ासन को लगा लो,
पश्चात् सभी तुम निजातम ध्यान पालो ॥२८८॥

संपूर्ण ज्ञान–मय–ज्योति–शिखा जलेगा,
अज्ञान मोह तम पूर्ण तभी मिटेगा।
हो नष्ट, राग रति रोषमयी प्रणाली,
उत्कृष्ट सौख्य मिलता, मिटती प्रणाली ॥२८९॥

दुःसंग से बच जिनागम चित्त देना,
एकान्त वास करना, धृतिधार लेना।
सूत्रार्थ चिंतन तथा गुरु वृद्ध सेवा,
ये ही उपाय शिव के, मिल जाय मेवा ॥२९०॥

हो चाहते मुनि पुनीत समाधि पाना,
साथी, व्रती श्रमण या बुध को बनाना।
एकान्त वास करना, भय त्याग देना,
शास्त्रानुसार मित भोजन मात्र लेना ॥२९१॥

जो अल्प, शुद्ध, तप वर्धक अन्न लेते,
क्या वैध औषध उन्हें कुछ काम देते?
ना गृद्धता अशन में रखते न लिप्सा,
वे वैध हो, कर रहे अपनी चिकित्सा ॥२९२॥

प्रायः अतीव रस सेवन हानिकारी,
उन्मत्तता उछलती, उससे विकारी।
पक्षी समूह, फल फूल लदें द्रुमों को,
ज्यों कष्ट दें, मदन त्यों विषयी जनों को ॥२९३॥

जो सर्व-इन्द्रिय जयी, मित भोज पाते,
एकान्त में शयन आसन भी लगाते।
रागादि दोष, उनको लख काँप जाते,
पीते दवा उचित, रोग विनाश पाते ॥२९४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२९५. जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ।।८।।

## २२. द्विविधि धर्मसूत्र

२९६. दो चेव जिणवरेहिं, जाइंजरामरणविप्पमुक्केहिं।
लोगम्मि पहा भणिया, सुस्समण सुसावगो वा वि ।।१।।

२९७. दाणं पूया मुक्खं, सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं, जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ।।२।।

२९८. सन्ति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ।।३।।

२९९. नो खलु अहं तहा, संचाएमि मुंडे जाव पव्वइत्तए।
अहं णं देवाणुप्पियाणं, अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइय
दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि ।।४।।

३००. पंच य अणुव्वयाइं, सत्त उ सिक्खा उ देसजइधम्मो।
सव्वेण व देसेण व, तेण जुओ होइ देसजई ।।५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ, व्याधियाँ न जवलौं तुमको सताती,
आती जरा न जव लौं तन को सुखाती।
ना इन्द्रियाँ शिथिल हो जव लौं तुम्हारी,
धारो स्वधर्म तव लौं शिव सौख्य कारी ॥२९५॥

## २२. द्विविध धर्म

सन्मार्ग है 'श्रमण' 'श्रावक' भेद से दो,
उन्मार्ग शेष, उनको तज शीघ्र से दो।
मृत्युंजयी अजर है अज है वली है,
ऐसा सदा कह रहे जिन केवली हैं ॥२९६॥

'स्वाध्याय' ध्यान यति धर्म प्रधान जानो,
भाई विना न इनके यति को न मानो।
है धर्म, श्रावक करे नित दान पूजा,
ऐसा करें न, वह श्रावक है न दूजा ॥२९७॥

होता सुशोभित पदों अपने गुणों से,
साधू सुसंस्तुत वही सन्न श्रावकों से।
पै साधु हो यदि परिग्रह भार धारे,
सागार श्रेष्ठ उनसे गृहधर्म पारे ॥२९८॥

कोई प्रलोभ वश साधु बना हुआ हो,
पै शक्ति हीन व्रत पालन में रहा हो।
तो श्रावकाचरण ही करता कराता,
ऐसा जिनेश मत है हमको वताता ॥२९९॥

श्री श्रावका चरण में व्रत पंच होते;
हैं सात शील व्रत ये विधि पंक होते।
जो एक या इन व्रतों सवको निभाता,
है भव्य श्रावक वही जगमें कहाता ॥३००॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## २३. श्रावकधर्म सूत्र

३०१. संपत्तदंसणाई, पइदियहं जइजणा सुणेई य
सामायारिं परमं जो, खलु तं सावगं बिंति ।।१।।

३०२. पंचुंवरसहियाइं, सत्त वि विसणाई जो विवज्जेइ ।
सम्मत्तविसुद्धमई, सो दंसणसावओ भणिओ ।।२।।

३०३. इत्थी जूयं मज्जं, मिगव्व वयणे तहा फरुसया य ।
दंडफरुसत्तमत्थस्स दूसणं सत्त वसणाइं ।।३।।

३०४. मांसासणेण वड्ढइ दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ ।
जूयं पि रमइ तो तं, पि वण्णिए पाउणइ दोसे ।।४।।

३०५. लोइयसत्थम्मि वि, वण्णियं जहा गयणगामिणो विप्पा ।
भुवि मंसासणेण पडिया, तम्हा ण पउंजए मंसं ।।५।।

३०६. मज्जेण णरो अवसो, कुणेइ कम्माणि णिंदणिज्जाइं ।
इहलोए परलोए, अणुहवइ अणंतयं दुक्खं ।।६।।

३०७. संवेगजणिदकरणा, णिस्सल्ला मंदरो व्व णिक्कंपा ।
जस्स दढा जिणभत्ती, तस्स भयं णत्थि संसारे ।।७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## २३. श्रावक धर्म सूत्र

चारित्र धारक गुरो, करुणा दिखा दो,
चारित्र का विधि, विधान हमें सिखा दो।
ऐसा सदैव कह श्रावक भव्य प्राणी,
चारित्र धारण करें सुन सन्त वाणी ॥३०१॥

जो सप्तधा व्यसन सेवन त्याग देते,
भाई कभी फल उदुम्वर खा न लेते।
वे भव्य दार्शनिक श्रावक नाम पाते,
धीमान धार दृग को निज धाम जाते ॥३०२॥

रे मद्यपान परनारि कुशील खोरी,
अत्यन्त क्रूरतम दंड, शिकार, चोरी।
भाई असत्य मय भाषण द्यूत क्रीड़ा,
ये सात हैं व्यसन दें दिन-रैन पीड़ा ॥३०३॥

है मांस के अशन से मति दर्प छाता,
तो दर्प से मनुज को मद पान भाता।
है मद्य पीकर जुवा तक खेल लेता,
यों सर्व दोष करके दुःख मोल लेता ॥३०४॥

रे मांस के अशन से जव व्योम गामी,
आकाश से गिर गया वह विप्रः स्वामी।
ऐसी कथा प्रचलिता सवने सुनी है,
वे मांस भक्षण अतः तजते गुणी हैं ॥३०५॥

जो मद्यपान करते, मदमत्त होते,
वे निन्द्य कार्य करते दुख बीज बोते।
सर्वत्र दुःख सहते दिन रैन रोते,
कैसे वनें फिर सुखी जिन धर्म खोते ॥३०६॥

निष्कम्प मेरु सम जो जिन भक्ति न्यारी,
जागी, विराग जननी उर मध्य प्यारी।
वे शल्य हीन वनते रहते खुशी से,
निश्चिन्त हो निडर ना डरते किसी से ॥३०७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३०८. सत्तू वि मित्तभावं, जम्हा उवयाइ विणयसीलस्स ।
विणओ तिविहेण तओ, कायव्वो देसविरएण ॥८॥

३०९. पाणिवहमुसावाए, अदत्तपरदारनियमणेहिं च ।
अपरिमिइच्छाओऽवि य, अणुव्वयाइं विरमणाइं ॥९॥

३१०. बंधवहच्छविच्छेए, अइभारे भत्तपाणवुच्छेए ।
कोहाइदूसियमणो, गोमणुयाईण नो कुज्जा ॥१०॥

३११. थूलमुसावायस्स उ, विरई दुच्चं, स पंचहा होइ ।
कन्नागोभु आल्लिय – नासहरण – कूडसक्खिज्जे ॥११॥

३१२. सहसा अब्भक्खाणं, रहसा य सदारमंतभेयं च ।
मोसोवएसयं, कूडलेहकरणं च वज्जिज्जा ॥१२॥

३१३. वज्जिज्जा तेनाहड - तक्करजोगं विरुद्धरज्जं च ।
कूडतुलकूडमाणं, तप्पडिरूवं च ववहारं ॥१३॥

३१४. इत्तरियपरिग्गहिया-ऽपरिगहियागमणा-णंगकीडं च ।
परविवाहक्करणं, कामे तिव्वाभिलासं च ॥१४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार में विनय की गरिमा निराली,
है शत्रु मित्र वनता, मिलती शिवाली।
धारें अतः विनय श्रावक भव्य सारे,
जावें सुशीघ्र भववारिधि के किनारे ।।३०८।।

हिंसा, मृषावचन, स्तेय कुशीलता ये,
मूर्च्छा परिग्रह इन्हीं वश हो व्यथायें।
हैं पंच पाप इनका इक देश त्याग,
होता अनुव्रत, धरें जग जाय भाग ।।३०९।।

हो बंध, छेद वध निर्बल प्राणियों का,
संरोध अन्न जल पाशव मानवों का।
क्रोधादि से मत करो टल जाय हिंसा,
जो एक देश व्रत पालक हो अहिंसा ।।३१०।।

भू गो सुता-विषय में न असत्य लाना,
झूठी गवाह, न धरोहर को दवाना।
यों स्थूल सत्य व्रत है यह पंच धारें,
मोक्षेच्छु श्रावक जिसे रुचि संग धारें ।।३११।।

मिथ्योपदेश न करो, सहसा न बोलो,
स्त्री का रहस्य अथवा पर का न खोलो।
ना कूट लेखन लिखो, कुटलायता से,
यों स्थूल सत्य व्रत धार, वचो व्यथा से ।।३१२।।

राष्ट्रानुकूल चलना 'कर' ना चुराना,
ले चौर्य द्रव्य नहिं चोरन को लुभाना।
धंधा मिलावट करो न, अचौर्य पालो,
हां नापतोल नकली न कभी चलालो ।।३१३।।

स्त्री मात्र को निरखते अविकारता से,
क्रीड़ा अनंग करते न निजी प्रिया से,
होते कदापि नहिं अन्य विवाह दोषी,
कामी अतीव बनते न, स्वदारतोषी ।।३१४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३१५. विरया परिग्गहाओ, अपरिमिआओ अणंततण्हाओ
बहुदोससंकुलाओ, नरयगइगमणपंथाओ ॥१५॥

३१६. खित्ताइ हिरण्णाई, धणाइ दुपयाइ-कुवियगस्स तहा।
सम्मं विसुद्धचित्तो, न पमाणाइक्कमं कुज्जा ॥१६॥

३१७. भाविज्ज य संतोसं, गहियमियाणिं अजाणमाणेणं।
थोवं पुणो न एवं, गिहिणस्सामो त्ति चिंतिज्जा ॥१७॥

३१८. जं च दिसावेरमणं, अणत्थदंडाउ जं च वेरमणं।
देसावगासियं पि य, गुणव्वयाइं भवे ताइं ॥१८॥

३१९. उड्ढमहे तिरियं पि य, दिसासु परिमाणकरणमिह पढमं।
भणियं गुणव्वयं खलु, सावगधम्मम्मि वीरेण ॥१९॥

३२०. वयभंगकारणं होइ, जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण।
कीरइ गमणणियत्ती, तं जाण गुणव्वयं विदियं ॥२०॥

३२१. विरई अणत्थदंडे, तच्चं, स चउव्विहो अवज्झाणो।
पमायायरिय हिंसप्पयाण पावोवएसे य ॥२१॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निस्सीम संग्रह परिग्रह का विधाता,
है दोष का, बस रसातल में गिराता।
तृष्णा अनन्त बढ़ती सहसा उसी से,
उद्दीप्त ज्यों अनल दीपक तेल-घी से ॥३१५॥

गार्हस्थ्य के उचित जो कुछ काम के हैं,
सागार सीमित परिग्रह को रखे हैं।
सम्यक्त्व धारक उसे न कभी बढ़ावे,
रागाभि भूत मनको न कभी बनावें ॥३१६॥

अत्यल्प ही कर लिया परिमाण भाई,
लेऊँ पुनः कुछ जरूरत जो कि आई।
ऐसा विचार तक ना तुम चित्त लाओ,
संतोष धार कर जीवन को चलाओ ॥३१७॥

हैं सात शील व्रत श्रावक भव्य प्यारे,
सातों व्रतों फिर गुणव्रत तीन न्यारे।
देशावकाशिक दिशा विरती सुनो रे,
आनर्थ दण्ड विरती इनको गुणो रे ॥३१८॥

सीमा विधान करना हि दशों दिशा में,
माना गया वह दिशाव्रत है धरा में।
आरम्भ सीमित बने इस कामना से,
सागार साधन करें इसका मुदा से ॥३१९॥

होते विनष्ट व्रत हो जिस देश में ही,
जाओ वहाँ मत कभी तुम स्वप्न में भी।
देशावकाशिक वही ऋषि देशना है,
धारो उसे विनशती चिर वेदना है ॥३२०॥

है व्यर्थ कार्य करना हि अनर्थ दण्ड,
है चार भेद इसके अघ श्वभ्र कुण्ड।
हिंसोपदेश, अति हिंसक शस्त्र देना,
दुर्ध्यान यान चढ़ना, नित मत्त होना।
होना सुदूर इनसे बहु कर्म खोना,
आनर्थ दण्ड विरती तुम शीघ्र लोना ॥३२१॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२२. अट्ठेण तं न बंधइ, जमणट्ठेणं तु थोवबहुभावा ।
अट्ठे कालाईया, नियामगा न उ अणट्ठाए ॥२२॥

३२३. कंदप्पं कुक्कुइयं, मोहरियं संजुयाहिगरणं च ।
उवभोगपरीभोगा-इरेयगयं चित्थ वज्जइ ॥२३॥

३२४. भोगाणं परिसंखा, सामाइय–अतिहिसंविभागो य ।
पोसहविही य सव्वो, चउरो सिक्खाउ वुत्ताओ ॥२४॥

३२५. वज्जणमणंतगुंबरि, अच्चंगाणं च भोगओ माणं ।
कम्मयओ खरकम्मा-इयाण अवरं इमं भणियं ॥२५॥

३२६. सावज्जजोगपरिरक्खणट्ठा, सामाइयं केवलियं पसत्थं ।
गिहत्थधम्मा परमंति नच्चा, कुज्जा बुहो आयहियं परत्था ॥२६॥

३२७. सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥२७॥

---

१. पंच औदुम्बर फलों का त्याग ।
२. जिन फूलों से हिंसा अधिक व फल कम मिलता है उन फूलों का (नीम आदि) त्याग ।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यल्प वन्धन आवश्यक कार्य से हो,
अत्यन्त वन्ध अनवश्यक कार्य से हो।
कालादि क्योंकि इकमें सहयोगी होते,
पै अन्य में जब अपेक्षित वे न होते ।।३२२।।

ज्यादा वको मत रखो अघ शस्त्र को भी,
तोड़ो न भोग परिमाण वनो न लोभी।
भद्दे कभी वचन भी हँसते न बोलो,
ना अंग व्यंग करते दृग मीच खोलो ।।३२३।।

है संविभाग अतिथिव्रत मोक्ष दाता,
भोगोपभोग परिमाण सुखी वनाता।
शुद्धात्म सामयिक प्रोषध से दिखाता,
यों चार शैक्ष्य व्रत हैं यह छन्द गाता ।।३२४।।

ना कन्द मूल फल[1] फूल[2] फलादि खाओ–
रे! स्वप्न में तक इन्हें मन में न लाओ।
और क्रूर कार्य न करो न कभी कराओ,
आजीविका वन अहिंसक ही चलाओ।
यों कार्य का अशन का परिमाण बांधो,
भोगोपभोग परिमाण सहर्ष साधो ।।३२५।।

उत्कृष्ट, सामयिक से गृह धर्म भाता,
सावद्यकर्म जिससे कि विराम पाता।
यों जान मान बुध है अघ त्याग देते,
स्वात्मार्थ सामयिक साधन साध लेते ।।३२६।।

सागार सामयिक में मन ज्यों लगाता,
सच्चे सुधी श्रमण के सम साम्य पाता।
हे भव्य सामयिक को अत एव धारो,
भाई किसी तरह से निज को निहारो ।।३२७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२८. सामाइयं ति काउं, परचिंतं जो उ चिंतई सड्ढो ।
अट्टवसट्टोवगओ, निरत्थयं तस्स सामाइयं ।।२८।।

३२९. आहारदेहसक्कार-बंभाऽवावारपोसहो य णं ।
देसे सव्वे य इमं, चरमे सामाइयं णियमा ।।२९।।

३३०. अन्नाईणं सुद्धाणं, कप्पणिज्जाण देसकालजुत्तं ।
दाणं जईणमुचियं, गिहीण सिक्खावयं भणियं ।।३०।।

३३१. आहारोसह-सत्थाभय-भेओ जं चउव्विहं दाणं ।
तं वुच्चइ दायव्वं, णिद्दिट्ठमुवासयज्झयणे ।।३१।।

३३२. दाणं भोयणमेत्तं, दिज्जइ धन्नो हवेइ सायारो ।
पत्तापत्तविसेसं, संदंसणे किं वियारेण ।।३२।।

३३३. साहूणं कप्पणिज्जं जं न वि दिण्णं कहिं पि किंचि तहिं ।
धीरा जहुत्तकारी, सुसावया तं न भुंजंति ।।३३।।

३३४. जो मुणिभुत्तविसेसं, भुंजइ सो भुंजए जिणुवदिट्ठं ।
संसारसारसोक्खं, कमसो णिव्वाणवरसोक्खं ।।३४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ जाय सामयिक में यदि अन्य चिंता,
ओ आर्त ध्यान बनता दुःख दे तुरन्ता।
निस्सार सामयिक हो उसका नितान्त,
संसार हो फिर भला किस भाँति सान्त ?॥३२८॥
संस्कार है न तन का न कुशीलता है,
आरम्भ ना अशन प्रोषध में तथा है।
तो पूर्ण त्याग इनका इक देश या लो,
धारो सुसामयिक, प्रोषध[1] पूर्ण पालो॥३२९॥
दो शुद्ध अन्न यति को समयानुकूल,[2]
देशानुकूल, प्रतिकूल कभी न भूल।
तो संविभाग अतिथिव्रत ओ बनेगा,
रे ! स्वर्गमोक्ष क्रमवार अवश्य देगा॥३३०॥
आहार औ अभय औषध और शास्त्र,
ये चार दान जग में सुख पूर-पात्र।
दातव्य है अतिथि के अनुसार चारो,
सागार शास्त्र कहता, धनको विसारो॥३३१॥
सागार मात्र इक भोजन दान से भी।
लो धन्य धन्यतम हो धनवान से भी।
दुःपात्र पात्र इस भाँति विचार से क्या ?
ले आम पेट भर ले, बस पेड़ से क्या ?॥३३२॥
शास्त्रानुकूल जल अन्न दिये न जाते,
भिक्षार्थ भिक्षुक वहाँ न कदापि जाते।
वे धीर वीर चलते समयानुकूल,
लेते न अन्न प्रतिकूल कदापि भूल॥३३३॥
सागार जो अशन को मुनि को खिलाके।
पश्चात् सभी मुदित हो अवशेष पाके।
वे स्वर्ग मोक्ष क्रम बार अवश्य पाते,
संसार में फिर कदापि न लौट आते॥३३४॥

१. जो पूर्ण प्रोषध करता है वह नियम से सामयिक करें।
२. समय (आगम) के अनुकूल और समय (काल) के अनुकूल और समय-आत्मानुकूल।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३३५. जं कीरइ परिरक्खा, णिच्चं मरण-भयभीरु-जीवाणं ।
तं जाण अभयदाणं, सिहामणिं सव्वदाणाणं ॥३५॥

## २४. श्रमणधर्म सूत्र

(अ) समता

३३६. समणो त्ति संजदो त्ति य, रिसि मुणि साधु त्ति वीदरागो त्ति ।
णामाणि सुविहिदाणं, अणगार भदंत दंतो त्ति ॥१॥

३३७. सीह-गय-वसह-मिय-पसु, मारुद-सूरुवहि-मंदरिंदु-मणी ।
खिदि-उरगंवरसरिसा, परम-पय-विमग्गया साहू ॥२॥

३३८. बहवे इमे असाहू, लोए वुच्चंति साहुणो ।
न लवे असाहुं साहु त्ति, साहुं साहु त्ति आलवे ॥३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो काल से डर रहे उनको बचाना,
माना गया अभयदान अहो सुजाना।
है चन्द्रमा अभयदान ज्वलन्त दीखे,
तो शेष दान उडु है पड़ जाय फीके ॥३३५॥

## २४. श्रमण धर्म सूत्र

ये वीतराग अनगार भदंत प्यारे,
साधू ऋषी श्रमण संयत संत सारे।
शास्त्रानुकूल चलते हमको चलाते,
वन्दूँ उन्हें विनय से शिर को झुकाते ॥३३६॥

गंभीर नीर निधि से, शशि से सुशान्त,
सर्वसहा अवनि से, मणि मंजु कान्त।
तेजोमयी अरुण से पशु से निरीह,
आकाश से निरवलम्बन ही सदीह ॥१॥

निस्संग वायु सम, सिंह समा प्रतापी,
स्थाई रहे उरग से न कहीं कदापि।
अत्यन्त ही सरल हैं मृग से सुडोल,
जो भद्र हैं वृषभ से गिरि से अडोल ॥२॥
स्वाधीन साधु गज सादृश स्वाभिमानी,
वे मोक्ष शोध करते सुन सन्त वाणी ॥३३७॥

है लोक में कुछ यहाँ फिरते असाधु,
भाई तथापि सब वे कहलाय साधु।
मैं तो असाधु-जन को कहता न साधु,
सत् साधु के स्तवन में मन को लगा दूँ ॥३३८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३३९. नाणदंसणसंपण्णं, संजमे य तवे रयं ।
एवंगुणसमाउत्तं, संजयं साहुमालवे ॥४॥

३४०. न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसच्चीरेण न तावसो ॥५॥

३४१. समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेय य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥६॥

३४२. गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू, गिण्हाहि साहूगुण मुंचऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं, जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥७॥

३४३. देहादिसु अणुरत्ता, विसयासत्ता कसायसंजुत्ता ।
अप्पसहावे सुत्ता, ते साहू सम्मपरिचत्ता ॥८॥

३४४. बहुं सुणेइ कण्णेहिं, बहुं अच्छीहिं पेच्छइ ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ॥९॥

३४५. सज्झायज्झाणजुत्ता, रत्तिं ण सुयंति ते पयामं तु ।
सुत्तत्थं चिंतंता, णिद्दाय वसं ण गच्छंति ॥१०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व के सदन हो वर बोधिधाम,
शोभे सुसंयमतया, तप से ललाम,
ऐसे विशेष गुण आकर हो सुसाधु।
तो वार-वार शिर में उनको नवाऊं ।।३३९।।

एकान्त से, मुनि न कानन-वास से हो,
स्वामी नहीं श्रमण भी कचलोच से हो।
ओंकार जाप जप, ब्राह्मण ना बनेगा,
छालादि को पहन तापस ना कहेगा ।।३४०।।

विज्ञान पा नियम से मुनि हो यशस्वी,
सम्यक्तया तप तपे तब हो तपस्वी।
होगा वही श्रमण जो समता धरेगा,
पा ब्रह्मचर्य फिर ब्रह्मण भी बनेगा ।।३४१।।

हो जाय साधु गुण पा, गुण खो असाधु,
होवो गुणी, अवगुणी न बनो न स्वादु।
जो राग रोष भर में समभाव धारे,
वे वन्द्य पूज्य निज से निज को निहारे ।।३४२।।

जो देह में रम रहें विषयी कषायी,
शुद्धातम का स्मरण भी करते न भाई।
वे साधु होकर बिना दृग जी रहे हैं,
पीयूष त्याग कर हा ! विष पी रहे हैं ।।३४३।।

भिक्षार्थ भिक्षु चलते वहु दृश्य पाते,
अच्छे, बुरे श्रवण में कुछ शब्द आते।
वे बोलते न फिर भी सुन मौन जाते,
लाते न हर्ष मन में न विषाद लाते ।।३४४।।

स्वाध्याय ध्यान तप में अति मग्न होते,
जो दीर्घ काल तक है निशि में न सोते।
तत्त्वार्थ चिंतन सदा करते मनस्वी,
निद्राजयी इसलिए बनते तपस्वी ।।३४५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३४६. निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु अ ॥११॥

३४७. लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निन्दापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥१२॥

३४८. गारवेसु कसाएसु, दंडसल्लभएसु य ।
नियत्तो हाससोगाओ, अनियाणो अबंधणो ॥१३॥

३४९. अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ ।
वासीचंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥१४॥

३५०. अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहिं, पसत्थदमसासणे ॥१५॥

३५ . खुहं पिवासं दुस्सेज्जं, सीउण्हं अरइं भयं ।
अहियासे अव्वहिओ, देहे दुक्खं महाफलं ॥१६॥

३५२. अहो निच्चं तवोकम्मं, सव्वबुद्धेहिं वण्णियं ।
जाय लज्जासमा वित्ती, एगभत्तं च भोयणं ॥१७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो अंग संग रखते ममता नहीं हैं,
हैं संग मान तजते समता घनी हैं।
हैं साम्य दृष्टि रखते सब प्राणियों में,
वे साधु धन्य, रमते नहिं गारवों में ॥३४६॥

जो एक से मरण जीवन को निहारे,
निन्दा मिले यश मिले समभाव धारे।
मानापमान-सुख दुःख समान मानें,
वे धन्य साधु; सम लाभ अलाभ जानें ॥३४७॥

आलस्य-हास्य तज शोक, अशोक होते,
ना शल्य गारव कषाय निकाय ढोते।
ना भीति बंधन निदान निधान होते,
वे साधु वन्द्य हमको, मन मैल धोते ॥३४८॥

हो अंगराग अथवा छिद जाय अंग,
भिक्षा मिलो, मत मिलो इकसार ढंग।
जो पारलौकिक न लौकिक चाह धारें,
वे साधु ही बस ! बसे उर में हमारे ॥३४९॥

है हेय भूत विधि आस्रव रोक देते,
आदेय भूत वर संवर लाभ लेते।
आध्यात्म ध्यान यम योग प्रयोग द्वारा,
है साधु लीन निज में तज भोग सारा ॥३५०॥

जीतो सहो दृग समेत परीषहों को,
शीतोष्ण भीति रति प्यास क्षुधादिकों को।
स्वादिष्ट इष्ट फल कायिक कष्ट देता,
ऐसा जिनेश कहते शिव पन्थ नेता ॥३५१॥

शास्त्रानुसार तब ही तप साधना हो,
ना वार "वार" दिन में इक बार खाओ !
ऐसा ऋषीश उपदेश सभी सुनाते,
जो भी चले तदनुसार स्वधाम जाते ॥३५२॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५३. किं काहदि वणवासो, कायक्लेसो विचित्त उववासो ।
अज्झयणमोणपहुदी, समदारहियस्स समणस्स ॥१८॥

३५४. बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए ।
संतिमग्गं च बूहए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१९॥

३५५. न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए ।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२०॥

(आ) वेश-लिंग

३५६. वेसो वि अप्पमाणो, असंजमपएसु वट्टमाणस्स ।
किं परियत्तियवेसं, विसं न मारेइ खज्जंतं ॥२१॥

३५७. पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविहविगप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओयणं ॥२२॥

३५८. पासंडीलिंगाणि व, गिहिलिंगाणि व बहुप्पयाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा, लिंगमिणं मोक्खमग्गो त्ति ॥२३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मासोपवास करना वनवास जाना,
आतापनादि तपना तनको सुखाना।
सिद्धान्त का मनन, मौन सदा निभाना,
ये व्यर्थ है, श्रमण के विन साम्य वाना ॥३५३॥

विज्ञान पा प्रथम संयत भाव धारो,
रे! ग्राम में नगर में कर दो विहारो।
संवेग शान्तिपथ पै गममान होवो,
होके प्रमत्त मत गोतम! काल खोओ ॥३५४॥

होगा नहीं जिन यहाँ, जिन धर्म आगे,
मिथ्यात्व का जव प्रचार नितान्त जागे।
हे भव्य गौतम! अतः भव धर्म पाया,
धारो प्रमाद पल भी न, जिनेश गाया ॥३५५॥

## (आ) वेश-लिंग

हो वाह्य वेश न कदापि प्रमाण भाई,
देता जभी तक असंयत में दिखाई।
रे वेश को वदल के विष जो कि पीता,
पाता नहीं मरण क्या रह जाय जीता ॥३५६॥

हो लोक को विदित ये जिन साधु आये,
शास्त्रादि साधन सुवेश अतः वनाये।
औ वाह्य संयम न, लिंग विना चलेगा'
जो अंतरंग-यम-साधन भी वनेगा ॥३५७॥

ये दीखते जगत में मुनि साधुओं के,
है वेश नैकविध भी गृहवासियों के।
वे अज्ञ मूढ़ जिनको जव धारते हैं,
है 'मोक्ष' मार्ग यह यों वस मानते हैं ॥३५८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५९. पुल्लेव मुट्ठी जह से असारे, अयन्तिए कूडकहावणे वा ।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ य जाणएसु ।।२४।।

३६०. भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं ।
भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिणा विंति ।।२५।।

३६१. भावविसुद्धिणिमित्तं, बाहिरगंथस्स कीरए चाओ ।
बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स ।।२६।।

३६२. परिणामम्मि असुद्धे, गंथे मुंचेइ बाहिरे य जई ।
बाहिरगंथच्चाओ, भावविहूणस्स किं कुणइ ? ।।२७।।

३६३. देहादिसंगरहिओ, माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ, स भावलिंगी हवे साहू ।।२८।।

## २५. व्रत सूत्र

३६४. अहिंसा सच्चं च अतेणगं च, तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ ।।१।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निस्सार मुष्टि वह अन्दर पोल वाली,
बेकार नोट यह है नकली निराली।
हो काँच भी चमकदार सुरत्न जैसा,
ज्यों जौहरी परखता नहिं मूल्य पैसा।
पूर्वोक्त द्रव्य जिस भाँति मृषा दिखाते,
है मात्र वेश उस भाँति सुधी वताते ॥३५९॥

है भाव लिङ्ग वर मुख्य अतः सुहाता,
है द्रव्य लिङ्ग परमार्थ नहीं कहाता।
है भाव से नियम से गुण दोष-हेतु,
होता भवोदधि वही भव सिन्धु सेतु ॥३६०॥

ये "भाव शुद्धतम हो" जव लक्ष्य होता,
तो वाह्य संग तजना अनिवार्य होता।
जो भीतरी कलुषता यदि ना हटाता,
तो वाह्य त्याग उसका वह व्यर्थ जाता ॥३६१॥

जो अच्छ स्वच्छ परिणाम वना न पाते,
पै वाहरी सव परिग्रह को हटाते।
वे भाव शून्य करनी करते कराते,
लेते न लाभ शिव का दुःख ही उठाते ॥३६२॥

काषायिकी परिणती जिसने घटायी,
औ निन्द्य जान तन की ममता मिटायी।
शुद्धात्म में निरत है तज संग संघी,
हो पूज्य साधु वह पावन भाव लिंगी ॥३६३॥

## २५. व्रत सूत्र

हिंसादि पंच अघ हैं तज दो अघों को,
पालो सभी परमपंच महाव्रतों को।
पश्चात् जिनोदित पुनीत विरागता का,
आस्वाद लो, कर अभाव विभावता का ॥३६४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३६५. णिस्सल्लस्सेव पुणो, महव्वदाइं हवंति सव्वाइं ।
वदमुवहम्मदि तीहिं दु, णिदाणमिच्छत्तमायाहिं ॥२॥

३६६. अगणिअ जो मुक्खसुहं, कुणइ निआणं असारसुहहेउं ।
सो कायमणिकएणं, वेरुलियमणिं पणासेइ ॥३॥

३६७. कुलजोणिजीवमग्गण-ठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं ।
तस्सारंभणियत्तण, परिणामो होइ पढमवदं ॥४॥

३६८. सव्वेसिमासमाणं, हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं ।
सव्वेसिं वदगुणाणं, पिंडो सारो अहिंसा हु ॥५॥

३६९. अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं न मुसं बूया, नो वि अन्नं वयावए ॥६॥

३७०. गामे वा णयरे वा, रण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं ।
जो मुंचदि गहणभावं, तिदियवदं होदि तस्सेव ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे ही महाव्रत नितान्त सुसाधु धारें,
निःशल्य हो विचरते त्रय शल्य टारें।
मिथ्या निदान व्रतघातक शल्य माया,
ऐसा जिनेश उपदेश सुनो सुनाया ॥३६५॥

है मोक्ष की यदि व्रती करता उपेक्षा,
चारित्र ले विषय की रखता अपेक्षा।
तो मूढ़ भूल मणि जो अनमोल देता,
धिक्कार काँच-मणि का वह मोल लेता ॥३६३॥

जो जीव थान, कुल मार्गणा योनियों में,
पा जीव बोध, करुणा रखता सबों में।
आरंभ त्याग उनकी करता न हिंसा,
हो साधु का विमल भाव वहीं अहिंसा ॥३६७॥

निष्कर्ष है परम पावन आगमों का,
भाई ! उदार उर धार्मिक आश्रयों का।
सारे व्रतों सदन है, सब सद्‌गुणों का,
आदेय है विमल जीवन साधुओं का।
वो विश्वसार जयवन्त रहे अहिंसा,
होती रहे सतत ही उसकी प्रशंसा ॥३६८॥

ना क्रोध भीति वश स्वार्थ तराजु तोलो,
लेओ न मोल अघ हिंसक बोल बोलो।
होगा द्वितीय व्रत सत्य वही तुम्हारा,
आनन्द का सदन जीवन का सहारा ॥३६९॥

जो भी पदार्थ परकीय उन्हें न लेते,
वे साधु देखकर भी वस छोड़ देते।
है स्तेय भाव तक भी मन में न लाते,
अस्तेय है व्रत यही जिन यों बताते ॥३७०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३७१. चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
दंतसोहणमेत्तं पि, ओग्गहंसि अजाइया ॥८॥

३७२. अइभूमिं न गच्छेज्जा, गोयरग्गगओ मुणी।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियं भूमिं परक्कमे ॥९॥

३७३. मूलमेअमहम्मस्स, महादोससमुस्सयं।
तम्हा मेहुणसंसग्गिं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥१०॥

३७४. मादुसुदाभगिणी विय, दट्ठूणित्थित्तियं य पडिरूवं।
इत्थिकहादिणियत्ती, तिलोयपुज्जं हवे बंभं ॥११॥

३७५. सव्वेसिं गंथाणं, तागो णिरवेक्खभावणापुव्वं।
पंचमवदमिदि भणिदं, चारित्तभरं वहंतस्स ॥१२॥

३७६. किं किंचणत्ति तक्कं, अपुणब्भवकामिणोध देहे वि।
संग त्ति जिणवरिंदा, णिप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा ॥१३॥

३७७. अप्पडिकुट्ठं उवधिं, अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं।
मुच्छादिजणणरहिदं, गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं ॥१४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये द्रव्य चेतन अचेतन जो दिखाते,
साधू न भूलकर भी उनको उठाते।
ना दाँत साफ करने तक सींक लेते,
अत्यल्प भी विन दिये कुछ भी न लेते ॥३७१॥

भिक्षार्थ भिक्षु जब जायं वहाँ न जाय,
जो स्थान वर्जित रहा अघ हो न पाय।
वे जायं जान कुल की मित भूमि लौं ही,
अस्तेय धर्म परिपालन श्रेष्ठ सो ही ॥३७२॥

अब्रह्म सेवन अवश्य अधर्म मूल,
है दोष धाम दुख दे जिस भाँति शूल।
निर्ग्रन्थ वे इसलिए सब ग्रंथ त्यागी,
सेवे न मैथुन कभी मुनि वीतरागी ॥३७३॥

माता सुता बहन-सी लखना स्त्रियों को,
नारी-कथा न करना भजना गुणों को।
श्री ब्रह्मचर्य व्रत है यह सार हन्ता,
है पूज्य वन्द्य जग में सुख दे अनन्ता ॥३७४॥

जो अंतरंग बहिरंग निसंग होता,
भोगाभिलाष बिन चारित भार ढ़ोता।
है पाँचवाँ व्रत "परिग्रह त्याग" पाता,
पाता स्वकीय सुख, तू दुख क्यों उठाता? ॥३७५॥

दुर्गन्ध अंग तक "संग" जिनेश गाया,
यों देह से खुद उपेक्षित हो दिखाया।
क्षेत्रादि बाह्य सब संग अतः विसारो,
होके निरीह तन से तुम मार मारो ॥३७६॥

जो माँगना नहिं पड़े गृहवासियों से,
ना हो विमोह ममतादिक भी जिन्होंसे।
ऐसे परिग्रह रखें उपयुक्त होवे,
पै अल्प भी अनुपयुक्त न साधु ढोवें ॥३७७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३७८. आहारे व विहारे, देसं कालं समं खमं उवधिं ।
जाणित्ता ते समणो, वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ।।१५।।

३७९. न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा ।।१६।।

३८०. सन्निहिं च न कुव्वेज्जा, लेवमायाए संजए ।
पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए ।।१७।।

३८१. संथारसेज्जासणभत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभे वि संते ।
एवप्पमपाणभितोसएज्जा, संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ।।१८।।

३८२. अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था अ अणुग्गए ।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि ण पत्थए ।।१९।।

३८३. संतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा ।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ? ।।२०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो देह देश-श्रम काल बलानुसार,
आहार ले यदि यती करता विहार।
तो अल्प कर्म मलसे वह लिप्त होता,
औचित्य एक दिन है भव-मुक्त होता ॥३७८॥

जो बाह्य में कुछ पदार्थ यहाँ दिखाते,
वे वस्तुतः नहिं परिग्रह हैं कहाते।
मूर्च्छा परिग्रह परन्तु यथार्थ में है,
श्री वीर का सदुपदेश मिला हमें है ॥३७९॥

ना संग संकलन संयत हो करो रे,
शास्त्रादि साधन सुचारु सदा धरो रे।
ज्यों संग की विहग ना रखते अपेक्षा,
त्यों संयमी समरसी, सबकी उपेक्षा ॥३८०॥

आहार-पान-शयनादिक खूब पाते,
पै अल्प में सकल कार्य सदा चलाते।
संतोष कोष, गतरोष अदोष साधु,
वे धन्य धन्यतर हैं शिर मैं नवाँ दूँ ॥३८१॥

ना स्वप्न में, न मन में, न किसी दशा में,
लेते नहीं अशन वे मुनि है निशा में।
जिव्हाजयी जितकषाय जिताक्ष योगी,
कैसे निशाचर बनें बनते न भोगी ॥३८२॥

आकीर्ण पूर्ण धरती जब थावरों से,
सूक्ष्मातिसूक्ष्म जग जंगम जंतुओं से।
वे रात्रि में न दिखते युग लोचनों से,
कैसे बने अशन-शोधन साधुओं से ?॥३८३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# २६. समिति-गुप्ति सूत्र

## (अ) अष्ट प्रवचन-माता

३८४. इरियाभासेसणाऽऽदाणे, उच्चारे समिई इय ।
मणगुत्ती, वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ।।१।।

३८५. एदाओ अट्ठ पवयणमादाओ णाणदंसणचरित्तं ।
रक्खंति सदा मुणिणो, मादा पुत्तं व पयदाओ ।।२।।

३८६. एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ।।३।।

३८७. जह गुत्तस्सिरियाई, न होंति दोसा तहेव समियस्स ।
गुत्तीट्ठिय प्पमायं, रुंभइ समिई सचेट्ठस्स ।।४।।

३८८. मरदु व जियदु व जीवो, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
पयदस्स णत्थि बंधो, हिंसामेत्तेण समिदीसु ।।५।।

३८९. आहच्च हिंसा समितस्स जा तू, सा दव्वतो होति ण भावतो उ ।
भावेण हिंसा तु असंजतस्सा, जे वा वि सत्ते ण सदा वधेति ।।६।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## २६. समिति-गुप्ति सूत्र

### (अ) अष्ट प्रवचन-माता

ईर्या रही समिति आद्य द्वितीय भाषा,
तीजी गवेषण धरे नश जाय आशा ।
आदान निक्षेपण-पुण्यनिधान चौथा,
व्युत्सर्ग पंचम रही सुन भव्य श्रोता ।
कायादि भेद वश भी त्रय गुप्तियाँ हैं,
ये गुप्तियाँ समितियाँ जननी समा हैं ।।३८४।।

माता स्वकीय सुतकी जिस भाँति रक्षा,
कर्त्तव्य मान करती, बन पूर्ण दक्षा ।
गुप्तादि अष्ट जननी उस भाँति सारी,
रक्षा सुरत्नत्रय की करतीं हमारी ।।३८५।।

निर्दोष से चरित पालन पोषणार्थ,
उल्लेखिता समितियाँ गुरु से यथार्थ ।
ये गुप्तियाँ इसलिए गुरु ने बताई,
काषायिकी परिणती मिट जाय भाई ।।३८६।।

निर्दोष गुप्तित्रय पालक साधु जैसे,
निर्दोष हो समितिपालक ठीक वैसे ।
वे तो अगुप्ति भव-मानस मैल धोते,
ये जागते समिति-जात प्रमाद खोते ।।३८७।।

जी जाय जीव अथवा मर जाय हंसा,
ना पालना समितियाँ बन जाय हिंसा ।
होती रहे वह भले कुछ बाह्य हिंसा,
तू पालता समितियाँ पलती अहिंसा ।।३८८।।

जो पालते समितियाँ, जब द्रव्य हिंसा,
होती रहे, पर कदापि न भाव हिंसा ।
होती असंयमतया वह भाव हिंसा,
हो जीव का न वध पै बन जाय हिंसा ।।३८९।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३९०. संपत्ति तस्सेव जदा भविज्जा, सा दव्वहिंसा खलु भावतो य ।
अज्झत्थसुद्धस्स जदा ण होज्जा, वधेण जोगो दुहतो वऽहिंसा ॥७॥

३९१. उच्चालियम्मि पाए, इरियासमियस्स णिग्गमणट्ठाए ।
आबाधेज्ज कुलिंगी, मरिज्ज तं जोगमासज्ज ॥८॥

३९२. ण हि तग्घादणिमित्तो, बंधो सुहुमो वि देसिओ समए ।
मुच्छा परिग्गहो त्ति य, अज्झप्प पमाणदो भणिदो ॥९॥

३९३. पउमिणिपत्तं व जहा, उदयेण ण लिप्पदि सिणेहगुणजुत्तं ।
तह समिदीहिं ण लिप्पइ, साधु काएसु इरियंतो ॥१०॥

३९४. जयणा उ धम्मजणणी, जयणा धम्मस्स पालणी चेव ।
तव्वुड्ढीकरी जयणा, एगंतसुहावहा जयणा ॥११॥

३९५. जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ ॥१२॥

## (आ) समिति

३९६. फासुयमग्गेण दिवा, जुगंतरप्पेहिणा सकज्जेण ।
जंतुण परिहरंते-णिरियासमिदी हवे गमणं ॥१३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिंसा द्विधा सतत वे करते-कराते,
जो मात्र संयत, असंयत हैं कहाते।
पै अप्रमत्त मुनि धार द्विधा अहिंसा,
होते गुणाकर, करूँ उनकी प्रशंसा ॥३९०॥

आता यती समिति से उठ बैठ जाता,
भाई तदा यदि मनो पर जीव जाता।
साधू तथापि नहिं है अघ कर्म पाता,
दोषी न हिंसक, अहिंसक ही कहाता ॥३९१॥

संमोह को तुम परिग्रह नित्य मानो,
हिंसा प्रमाद भर को सहसा पिछानो।
अध्यात्म आगम अहो इस भाँति गाता,
भव्यात्म को सतत शान्ति-सुधा पिलाता ॥३९२॥

ज्यों पद्मिनी वह सचिक्कण पत्रवाली,
हो नीर में न सड़ती रहती निराली।
त्यों साधु भी समितियाँ जब पालता है,
ना पापलिप्त बनता सुख साधता है ॥३९३॥

आचार हो समितिपूर्वक दुःख हर्त्ता,
है धर्म-वर्धक तथा सुख-शान्तिकर्त्ता।
है धर्म का जनक चालक भी वही है,
धारो उसे मुकति की मिलती मही है ॥३९४॥

आता यती चिरता, उठ बैठ, जाता,
हो सावधान तन को निशि में सुलाता।
औ' बोलता, अशन एषण साथ पाता,
तो पाप कर्म उसके नहिं पास आता ॥३९५॥

## (आ) समिति

हो मार्ग प्रासुक, न जीव विराधना हो,
जो चार हाथ पथ पूर्ण निहारना हो।
ले स्वीय कार्य कुछ पै दिन में चलोगे,
ईर्यामयी समिति को तब पा सकोगे ॥३९६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३९७. इन्दियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा ।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते इरियं रिए ॥१४॥

३९८. तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया ।
तं उज्जुअं न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे ॥१५॥

३९९. न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्सन्तरेण वा ॥१६॥

४००. तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी ।
सच्चा-वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥१७॥

४०१. तहेव काणं काणे त्ति, पंडगं पंडगे त्ति वा ।
वाहियं वा वि रोगि त्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए ॥१८॥

४०२. पेसुण्णहासकक्कस - परणिंदाप्पप्पसंसा - विकहादी ।
वज्जित्ता सपरहियं, भासासमिदी हवे कहणं ॥१९॥

४०३. दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुण्णं वियंजियं ।
अयंपिरमणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं ॥२०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार के विषय में मन ना लगाना,
स्वाध्याय पंच विधना करना कराना।
एकाग्र चित्त करके चलना जभी हो,
ईर्या सही समिति है पलती तभी वो ।।३९७।।

हो जा रहे पशु यदा जल भोज पाने,
जाओ न संनिकट भी उनके सयाने।
हे साधु ! ताकि तुम से भय वे न पावें,
जो यत्र-तत्र भय से नहिं भाग जावें।।३९८।।

आत्मार्थ या निजयार्थ परार्थ साधु,
निस्सार भाषण करे न स्वधर्म स्वादु।
बोले नहीं वचन हिंसक मर्मभेदी,
भाषामयी समिति पालक आत्मवेदी ।।३९९।।

बोलो न कर्ण कटु निन्द्य-कठोर भाषा,
पावें न ताकि जग जीव कदापि त्रासा।
हो पाप वन्ध, वह सत्य कभी न बोलो,
घोलो सुधा न विष में, निज नेत्र खोलो ।।४००।।

हो एक नेत्र नर को कहना न काना,
औ' चोर को कुटिल चोर नहीं वताना।
या रुग्ण को तुम न रुग्ण कभी कहो रे,
ना 'ना' नपुंसक नपुंसक को कहो रे ।।४०१।।

साधू करे न परनिन्दन आत्मशंसा,
बोले न हास्य-कटु-कर्कश-पूर्ण भाषा।
स्वामी करे न विकथा, मित मिष्ठ बोलें,
भाषामयी समिति में नित ले हिलोरे ।।४०२।।

हो स्पष्ट हो विशद संशय नाशिनी हो,
हो श्राव्य भी सहज हो सुखकारिणी हो।
माधुर्य-पूर्ण, मित, मार्दव-सार्थ-भाषा,
बोलें महामुनि, मिले जिससे प्रकाशा ।।४०३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०४. दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी, दोवि गच्छंति सोग्गइं ।।२१।।

४०५. उग्गम-उप्पादण-एसणेहिं, पिंडं च उवधि सज्जं वा ।
सोधंतस्स य मुणिणो, परिसुज्झइ एसणा समिदी ।।२२।।

४०६. ण बलाउसाउअट्ठं, ण सरीरस्सुवचयट्ठ तेजट्ठं ।
णाणट्ठसंजमट्ठं, झाणट्ठं चेव भुंजेज्जा ।।२३।।

४०७. जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ।
ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ।।२४।।

४०८. एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणेरया ।।२५।।

४०९. आहाकम्म-परिणओ, फासुयभोई वि बंधओ होई ।
सुद्धं गवेसमाणो, आहाकम्मे वि सो सुद्धो ।।२६।।

४१०. चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई ।
आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओवि समिए सया ।।२७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो चाहता न फल दुर्लभ भव्य दाता,
साधू अयाचक यहाँ विरला दिखाता।
दोनों नितान्त द्रुत ही निज-धाम जाते,
विश्रान्त हो सहज में सुख-शान्ति पाते ।।४०४।।

उत्पादना-अशन उद्गम दोष हीन,
आवास अन्न शयनादिक लें, स्वलीन।
वे एषणा समिति साधक साधु प्यारे,
हो कोटिशः नमन ये उनको हमारे ।।४०५।।

आस्वाद प्राप्त करने वल-कान्ति पाने,
लेते नहीं अशन जीवन को वढ़ाने।
पै साधु ध्यान तप संयम बोध पाने,
लेते अतः अशन अल्प अये! सयाने ।।४०६।।

गाना सुना गुण गुणा षट् पदों का,
पीता पराग रस फूल-फलों दलों का।
देता परन्तु उनको न कदापि पीड़ा,
होता सुतृप्त, करता दिन रैन क्रीड़ा ।।४०७।।

दाता यथा विधि यथा वल दान देते,
देते विना दुःख उन्हें मुनिदान लेते।
यों साधु भी भ्रमर से मृदुता निभाते,
वे एषणा समिति पालक हैं कहाते ।।४०८।।

उद्दिष्ट, प्रासुक भले, यदि अन्न लेते,
वे साधु, दोषमल में व्रत फूंक देते।
उद्दिष्ट भोजन मिले, मुनि वीतरागी,
शास्त्रानुसार यदि ले, नहिं दोषभागी ।।४०९।।

जो देख-भाल, कर मार्जन पिच्छिका से,
शास्त्रादि वस्तु रखना, गहना दया से।
आदान निक्षिपण है समिति कहाती,
पाले उसे सतत साधु, सुखी वनाती ।।४१०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४११. एगंते अच्चित्ते दूरे, गूढे विसालमविरोहे ।
उच्चारादिच्चाओ, पदिठावणिया हवे समिदी ॥२८॥

(इ) गुप्ति

४१२. संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य ।
मणं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२९॥

४१३. संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य ।
वयं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥३०॥

४१४. संरंभसमारंभे, आरंभम्मि तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥३१॥

४१५. खेत्तस्स वई णयरस्स, खाइया अहव होइ पायारो ।
तह पावस्स णिरोहो, ताओ गुत्तीओ साहुस्स ॥३२॥

४१६. एया पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी ।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए ॥३३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकान्त हो विजन विस्तृत ना विरोध,
सम्यक् जहाँ वन सके त्रस जीव शोध ।
ऐसा अचित्त थल पै मलमूत्र त्यागे,
व्युत्सर्गरूप समिती गह साधु जागे ।।४११।।

## (इ) गुप्ति

आरम्भ में न समरम्भन में लगाना,
संसार के विषय से मन को हटाना ।
होती तभी मनसगुप्ति सुमुक्ति दात्री,
ऐसा कहें श्रमण श्री जिन-शास्त्र-शास्त्री ।।४१२।।

आरंभ में न समरम्भन में लगाते,
सावद्य से वचन योग यती हटाते ।
होती तभी वचन गुप्ति सुखी वनाती,
कैवल्य-ज्योति झट से जब जो जगाती ।।४१३।।

ना काय योग अघ-कर्दम में फंसाते,
आरम्भ में न समरम्भन में लगाते ।
ओ कायगुप्ति, जड़काय विनाशती है,
विज्ञान पंकज-निकाय विकाशती है ।।४१४।।

प्राकार ज्यों नगर की करता सुरक्षा,
किंवा सुवाड़ कृषि की करती सुरक्षा ।
त्यों गुप्तियाँ परम पंच महाव्रतों की,
रक्षा सदैव करती मुनि के गुणों की ।।४१५।।

जो गुप्तियाँ समितियाँ नित पालते हैं,
सम्यक्तया स्वयम् को ऋषि जानते हैं ।
वे शीघ्र, बोध वल दर्शन धारते हैं,
संसार सागर किनार निहारते हैं ।।४१६।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## २७. आवश्यक सूत्र

४१७. एरिसभेदब्भासे, मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं ।
तं दढकरणनिमित्तं, पडिक्कमणादी पवक्खामि ।।१।।

४१८. परिचत्ता परभावं, अप्पाणं झादि णिम्मलसहावं ।
अप्पवसो सो होदि हु, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं ।।२।।

४१९. आवासं जइ इच्छसि, अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं ।
तेण दु सामइयगुणं, संपुण्णं होदि जीवस्स ।।३।।

४२०. आवासएण हीणो, पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो ।
पुव्वुत्तकमेण पुणो, तम्हा आवासयं कुज्जा ।।४।।

४२१. पडिकमणपहुदिकिरियं, कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं ।
तेण दु विरागचरिए, समणो अब्भुट्ठिदो होदि ।।५।।

४२२. वयणमयं पडिकमणं, वयणमयं पच्चखाण णियमं च ।
आलोयण वयणमयं, तं सव्वं जाण सज्झाउं ।।६।।

४२३. जदि सक्कदि कादुं जे, पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं ।
सत्तिविहीणो जा जइ, सद्दहणं चेव कायव्वं ।।७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## २७. आवश्यक सूत्र

हो भेद ज्ञानमय भानु उदीयमान,
मध्यस्थ भाव वश चारित हो प्रमाण।
ऐसे चरित्र गुण में पुनि पुष्टि लाने,
होते प्रतिक्रमण आदिक ये सयाने ।।४१७।।

सद्ध्यान में श्रमण अन्तर धाम होके,
रागादि भाव पर है पर भाव रोके।
वे ही निजातमवशी यति भव्य प्यारे,
जाते अवश्यक कहें उन कार्य सारे।।४१८।।

भाई तुझे यदि अवश्यक पालना है,
होके समाहित स्व में मन मारना है।
हीराभ सामयिक में द्युति जाग जाती,
सम्मोह तामस निशा झट भाग जाती।।४१९।।

जो साधु हो न षड्वश्यक पालता है,
चारित्र से पतित हो सहता व्यथा है।
आत्मानुभूति कब हो यह कामना है,
आलस्य त्याग षडवश्यक पालना है।।४२०।।

सामायिकादि षडवश्यक साथ पालें,
जो साधु निश्चय सुचारित पूर्ण प्यारे।
वीतरागमय शुद्धचरित्र – धारी,
पूजो उन्हें परम उन्नति हो तुम्हारी।।४२१।।

आलोचना नियम आदिक मूर्त्तमान,
भाई प्रतिक्रमण शाब्दिक प्रत्यख्यान।
स्वाध्याय ये, चरित रूप गये न माने,
चारित्र आन्तरिक आत्मिक है सयाने।।४२२।।

संवेगधारक यथोचित शक्ति वाले,
ध्यानाभिभूत षडवश्यक साधु पालें।
ऐसा नहीं यदि बने यह श्रेष्ठ होगा,
श्रद्धान् तो दृढ़ रखें द्रुत मोक्ष होगा।।४२३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४२४. सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणयं ।
पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणं ॥८॥

४२५. समभावो सामइयं, तणकंचण-सत्तुमित्तविसओ त्ति ।
निरभिस्संगं चित्तं, उचियपवित्तिप्पहाणं च ॥९॥

४२६. वयणोच्चारणकिरियं, परिचत्ता वीयरायभावेण ।
जो झायदि अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥१०॥

४२७. विरदो सव्वसावज्जे, तिगुत्तो पिहिदिंदिओ ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥११॥

४२८. जो समो सव्वभूदेसु, थावरेसु तसेसु वा ।
तस्स सामायिगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥१२॥

४२९. उसहादिजिणवराणं, णामणिरुत्तिं गुणाणुकित्तिं च ।
काऊण अच्चिदूण य, तिसुद्धिपणामो थवो णेओ ॥ १३॥

४३०. दव्वे खेत्ते काले, भावे य कयावराहसोहणयं ।
णिंदणगरहणजुत्तो, मणवचकायेण पडिक्कमणं ॥१४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिकं जिनप की स्तुति वन्दना हो,
'कायोतसर्गं समयोचित साधना हो।
सच्चा प्रतिक्रमण हो अघप्रत्यख्यान,
पालें मुनीश षडवश्यक बुद्धिमान ॥४२४॥

लो! काँच को कनक को सम ही निहारें,
वैरी सहोदर जिन्हें इकसार सारे।
स्वाध्याय ध्यान करते मन मार देते,
वे साधु सामयिक को उर धार लेते ॥४२५॥

वाक्योग रोक जिसने मन मौन धारा,
औ' वीतराग बन आतम् को निहारा।
होती समाधि परमोत्तम ही उसीकी,
पूजूं उसे शरण और नहीं किसी की ॥४२६॥

आरम्भ दम्भ तज के त्रय गुप्ति पालें,
है पंच इन्द्रियजयी समदृष्टि वाले।
स्थाई सुसामयिक है उनमें दिखाता,
यों केवली परम शासन गीत गाता ॥४२७॥

है साम्यभाव रखते त्रस थावरों में,
स्थाई सुसामयिक हो उन साधुओं में।
ऐसे जिनेश मत है मत भूल रे! तू?
भाई! अगाध भव-वारिधि मध्य सेतु ॥४२८॥

आदीश आदि जिन है उन गीत गाना,
लेना सुनाम उनके यश को बढ़ाना।
औ' पूजना नमन भी करना उन्हीं को?
होता जिनेश-स्तव है प्रणमूं उसी को ॥४२९॥

द्रव्यों थलों समयभाव प्रणालियों में,
है दोष जो लग गये, अपने व्रतों में।
वाक्काय से मनस से उनको मिटाने,
होती प्रतिक्रमण की विधि है सयाने ॥४३०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४३१. आलोचणणिंदणगरह-णाहिं अब्भुट्ठिओ अकरणाए ।
तं भावपडिक्कमणं, सेसं पुण दव्वदो भणिअं ।।१५।।

४३२. मोत्तूण वयणरयणं, रागादीभाववारणं किच्चा ।
अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु होदि त्ति पडिकम्मणं ।।१६।।

४३३. झाणणिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं ।
तम्हा दु झाणमेव हि, सव्वऽदिचारस्स पडिक्कमणं ।।१७।।

४३४. देवस्सियणियमादिसु, जहुत्तमाणेण उत्तकालम्हि ।
जिणगुणचिंतणजुत्तो, काउसग्गो तणुविसग्गो ।।१८।।

४३५. जे केइ उवसग्गा, देवमाणुस-तिरिक्खऽचेदणिया ।
ते सव्वे अधिआसे, काउसग्गे ठिदो संतो ।।१९।।

४३६. मोत्तूण सयलजप्पम-णागयसुहमसुहवारणं किच्चा ।
अप्पाणं जो झायदि, पच्चक्खाणं हवे तस्स ।।२०।।

४३७. णियभावं ण वि मुच्चइ, परभावं णेव गेण्हए केइ ।
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोऽहं इदि चिंतए णाणी ।।२१।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आलोचना गरहणा करता स्वनिन्दा,
ना साधु दोष करता अघ का न धन्धा।
होता प्रतिक्रमण भाव मयी वही है,
तो शेष द्रव्यमय हैं रुचते नहीं है।।४३१।।

रागादि भावमल को मन से हटाता,
हो निर्विकल्प मुनि है निज आत्म ध्याता।
सारी क्रिया वचन की तजता, सुहाता,
सच्चा प्रतिक्रमण लाभ वही उठाता।।४३२।।

स्वाध्याय रूप सर में अवगाह पाता,
सम्पूर्ण दोष मल को पल में धुलाता।
सद्ध्यान ही, विषम कल्मष पातकों का,
सच्चा प्रतिक्रमण है घर सद्गुणों का।।४३३।।

है देह नेह तज के जिन गीत गाते,
साधु प्रतिक्रमण हैं करते सुहाते।
कायोतसर्ग उनका वह है कहाता,
संसार में सहज शाश्वत शांतिदाता।।४३४।।

घोरोपसर्ग यदि हो असुरों सुरों से,
या मानवों मृगगणों मरुतादिकों से।
कायोतसर्गरत साधु सुधी तथापि,
निस्पंद शैल, लसते समता-सुधा पी।।४३५।।

हो निर्विकल्प तज जल्प-विकल्प सारे,
साधु अनागत शुभाशुभ भाव टारें।
शुद्धात्म ध्यान सर में डुबकी लगाते,
वे प्रत्यख्यान गुण धारक हैं कहाते।।४३६।।

जो आतमा न तजता निज भाव को है,
स्वीकारता न परकीय विभाव को है।
दृष्टा बना निखिल का परिपूर्ण ज्ञाता,
'मैं ही रहा वह' सुधी इस भाँति गाता।।४३७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४३८. जं किंचि मे दुच्चरितं, सव्वं तिविहेण वोसिरे ।
सामाइयं तु तिविहं, करेमि सव्वं णिरायारं ।।२२।।

## २८. तप सूत्र

### (अ) बाह्यतप

४३९. जत्थ कसायणिरोहो, बंभं जिणपूयण अणसणं च ।
सो सव्वो चेव तवो, विसेसओ मुद्धलोयंमि ।।१।।

४४०. सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ।।२।।

४४१. अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ ।।३।।

४४२. कम्माण णिज्जरट्ठं, आहारं परिहरेइ लीलाए ।
एगदिणादिपमाणं, तस्स तवं अणसणं होदि ।।४।।

४४३. जे पयणुभत्तपाणा, सुयहेऊ ते तवस्सिणो समए ।
जो अ तवो सुयहीणो, बाहिरयो सो छुहाहारो ।।५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो भी दुराचरण है मुझ में दिखाता,
वाक्काय से मनस से उसको मिटाता।
नीराग सामयिक को त्रिविधा करूँ मैं,
तो वार-वार तन धार नहीं मरूँ मैं ।।४३८।।

## २८. तप सूत्र

### (अ) बाह्यतप

जो ब्रह्मचर्य रहना, जिन ईश पूजा,
सारी कषाय तजना, तजना न ऊर्जा।
ध्यानार्थ अन्न तजना "तप" ये कहाते,
प्रायः सदा भविक लोग इन्हें निभाते ।।४३९।।

है मूल में द्विविध रे तप मुक्तिदाता,
जो अंतरंग वहिरंग तथा सुहाता।
है अंतरंग तप के छह भेद होते,
है भेद वाह्य तप के उतने हि होते ।।४४०।।

"ऊनोदरी" "अनशना" नित पाल रे ! तू,
"भिक्षाक्रिया" रस-विमोचन मोक्ष हेतु।
"संलीनता" दुःख निवारक कायक्लेश,
ये वाह्य के छह हुए कहते जिनेश ।।४४१।।

जो कर्म नाश करने समयानुसार,
है त्यागता अशन को तन को संवार।
साधू वही अनशना तप साधता है,
होती सुशोभित तभी जग साधुता है ।।४४२।।

आहार अल्प करते श्रुतबोध पाने,
वे तापसी समय में कहलाय शाने।
भाई विना श्रुत उपोषण प्राण खोना,
आत्मावबोध उससे न कदापि होता ।।४४३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४४४. सो नाम अणसणतवो, जेण मणोऽमंगुलं न चिंतेइ ।
जेण न इंदियहाणी, जेण य जोगा न हायंति ।।६।।

४४५. बलं थामं च पेहाए, सद्धामारोग्गमप्पणो ।
खेत्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं निजुंजए ।।७।।

४४६. उवसमणो अक्खाणं, उववासो वण्णिदो समासेण ।
तम्हा भुंजंता वि य, जिदिंदिया होंति उववासा ।।८।।

४४७. छट्ठट्ठमदसमदुवालसेंहि, अबहुसुयस्स जा सोही ।
तत्तो बहुतरगुणिया, हविज्ज जिमियस्स नाणिस्स ।।९।।

४४८. जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे ।
जहन्नेणेगसित्थाई, एवं दव्वेण ऊ भवे ।।१०।।

४४९. गोयरपमाणदायग-भायणणाणाविधाण जं गहणं ।
तह एसणस्स गहणं, विविधस्स य वुत्तिपरिसंखा ।।११।।

४५०. खीरदहिसप्पिमाई, पणीयं पाणभोयणं ।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ।।१२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ना इन्द्रियाँ शिथिल हो, मन हो न पापी,
ना रोगकानुभव काय करे कदापि ।
होती वही अनशना, जिससे मिली हो,
आरोग्य पूर्ण नव-चेतनता खिली हो ।।४४४।।

उत्साह चाह विधि राह पदानुसार,
आरोग्य-काल-निज देह वलानुसार ।
ऐसा करें अनशना ऋषि साधुसारे,
शुद्धात्म को नित निरंतर वे निहारें ।।४४५।।

लेते हुए अशन को उपवास साधें,
जो साधु इन्द्रियजयी निजको अराधें ।
हो इन्द्रियाँ शमित तो उपवास होता,
धोता कुकर्म मल को, सुख को संजोता ।।४४६।।

मासोपवास करते, लघु धी यमी में,
ना हो विशुद्धि उतनी, जितनी सुधी में ।
आहार नित्य करते फिर भी तपस्वी,
होते विशुद्ध उर में, श्रुत में यशस्वी ।।४४७।।

जो एक एक कर ग्रास घटा घटाना,
औ' भूख से अशन को कम न्यून पाना ।
ऊनोदरी तप यही व्यवहार से है,
ऐसा कहें गुरु, सुदूर विकार से है ।।४४८।।

दाता खड़े कलश ले हँसते मिले तो,
लेऊँ तभी अशन प्रांगण में मिले तो ।
इत्यादि नेम मुनि ले अशनार्थ जाते,
भिक्षा क्रिया यह रही गुरु यों वताते ।।४४९।।

स्वादिष्ट इष्ट अति मिष्ठ गरिष्ठ खाना,
घी दूध आदि रस हैं इनको न खाना ।
माना गया तप वही 'रसत्याग' नामा,
धारूँ उसे, वर सकूँ वर मुक्ति रामा ।।४५०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५१. एगंतमणावाए, इत्थीपसुविवज्जिए ।
सयणासणसेवणया, विवित्तसयणासणं ॥१३॥

४५२. ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जंति, कायकिलेसं तमाहियं ॥१४॥

४५३. सुहेण भाविदं णाणं, दुहे जादे विणस्सदि ।
तम्हा जहाबलं जोई, अप्पा दुक्खेहि भावए ॥१५॥

४५४. ण दुक्खं ण सुखं वा वि, जहाहेतु तिगिच्छिति ।
तिगिच्छिए सुजुत्तस्स, दुक्खं वा जइ वा सुहं ॥१६॥

४५५. मोहक्खए उ जुत्तस्स, दुक्खं वा जइ वा सुहं ।
मोहक्खए जहाहेउ, न दुक्खं न वि वा सुहं ॥१७॥

## (आ) आभ्यन्तर तप

४५६. पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झावो ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भितरो तवो ॥१८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकान्त में, विजन कानन मध्य जाना,
श्रद्धासमेत शयनासन को लगाना ।
होता वही तप सुधारस पेय प्याला,
प्यारा 'विविक्त शयनासन" नाम वाला ।।४५१।।

वीरासनादिक लगा, गिरि गह्वरों में,
नाना प्रकार तपना वन कन्दरों में।
है कायक्लेश तप, तापस ताप तापी,
पुण्यात्म हो धर उसे तज पाप पापी ।।४५२।।

जो तत्त्व बोध सुखपूर्वक हाथ आता,
आते हि दुःख झट से वह भाग जाता।
वे कायक्लेश समवेत अतः सुयोगी,
तत्वानुचिंतन करें समुपोपयोगी ।।४५३।।

जाता किया जव इलाज कुरोग का है,
ना दुःख हेतु सुख हेतु न रुग्ण का है।
भाई इलाज करने पर रुग्ण को ही,
हो जाय दुःख,सुख भी सुन भव्य, मोही ।।४५४।।

त्यों मोहनाश सविपाकतया यदा हो,
ना दुःख हेतु सुख हेतु नहीं तदा हो।
पै मोह के विलय में रत है वसी को,
होता कभी दुःख कभी सुख भी उसी को ।।४५५।।

## (आ) आभ्यन्तर तप

'प्रायश्चिता', 'विनय' औ ऋषि-साधु-सेवा,
'स्वाध्याय' ध्यान धरते वरबोध मेवा ।
व्युत्सर्ग, स्वर्ग अपवर्ग महर्घ-दाता,
है अंतरंग तप ये छह मोक्ष धाता ।।४५६।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५७. वद-समिदि-सील-संजम-परिणामो करणणिग्गहो भावो ।
सो हवदि पायच्छित्तं, अणवरयं चेव कायव्वो ॥१९॥

४५८. कोहादि-सगब्भाव-क्खयपहुदि-भावणाए णिग्गहणं ।
पायच्छित्तं भणिदं, णियगुणचिंता य णिच्छयदो ॥२०॥

४५९. णंताणंतभवेण, समज्जिअ-सुहअसुहकम्मसंदोहो ।
तवचरणेण विणस्सदि, पायच्छित्तं तवं तम्हा ॥२१॥

४६०. आलोयण पडिकमणं, उभयविवेगो तहा विउस्सग्गो ।
तव छेदो मूलं वि य, परिहारो चेव सद्दहणा ॥२२॥

४६१. अणाभोगकिदं कम्मं, जं किं पि मणसा कदं ।
तं सव्वं आलोचेज्ज हु, अव्वाखित्तेण चेदसा ॥२३॥

४६२. जह बालो जंपन्तो, कज्जमकज्जं च उज्जुयं भणइ ।
तं तह आलोइज्जा, मायामयविप्पमुक्को वि ॥२४॥

४६३. जह कंटएण विद्धो, सव्वंगे वेयणद्दिओ होइ ।
तह चेव उद्धियम्मि उ, निस्सल्लो निव्वुओ होइ ॥२५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो भाव है समितियों व्रत संयमों का,
प्रायश्चिता वह सही दम इन्द्रियों का।
ध्याऊँ उसे विनय से उर में विठाता,
होऊँ अतीत विधि से विधि सो विधाता ।।४५७।।

काषायिकी विकृतियाँ मन में न लाना,
आजाय तो जब कभी उनको हटाना।
गाना स्वकीय गुणगीत, सदा सुहाती,
प्रायश्चिता वह सुनिश्चय नाम पाती ।।४५८।।

वर्षों युगों भवभवों समुपार्जितों का,
होता विनाश तप से भवबन्धनों का।
प्रायश्चिता इसलिए 'तप' हो रहा है,
त्रैलोक्य पूज्य प्रभु ने जग को कहा है ।।४५९।।

आलोचना अरु प्रतिक्रमणी भया है,
व्युत्सर्ग, छेद, तप, मूल, विवेकता है।
श्रद्धान और परिहार प्रमोदकारी,
प्रायश्चिता दश विधा इस भाँति प्यारी ।।४६०।।

विक्षिप्त चित्त वश आगत दोषकों को,
हेयों अयोग्य अनभोग कृतादिकों को।
आलोचना निकट जा गुरु के करो रे,
भाई नहीं कुटिलता उर में धरो रे ।।४६१।।

माँ को यथा तनुज, कार्य अकार्य को भी,
है सत्य, सत्य कहता, उर पाप जो भी।
मायाभिमान तज, साधु तथा अघों की,
गाथा कहें, स्वगुरु को, दु:खदायकों की ।।४६२।।

हैं शल्य शूल चुभते जब पाद में जो,
दुर्वेदनानुभव पूरण अंग में हो।
ज्यों ही निकाल उनको हम फेंक देते,
त्यों ही सुशीघ्र सुखसिंचित स्वास लेते ।।४६३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४६४. एवमणुद्धियदोसो, माइल्लो तेणं दुक्खिओ होइ ।
सो चेव चत्तदोसो, सुविसुद्धो निव्वुओ होइ ॥२६॥

४६५. जो पस्सदि अप्पाणं, समभावे संठवित्तु परिणामं ।
आलोयणमिदि जाणह, परमजिणंदस्स उवएसं ॥२७॥

४६६. अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं, तहेवासणदायणं ।
गुरुभत्तिभावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ॥२८॥

४६७. दंसणणाणे विणओ, चरित्ततव-ओवचारिओ विणओ
पंचविहो खलु विणओ, पंचमगइणाइगो भणिओ ॥२९॥

४६८. एकम्मि हीलियम्मि, हीलिया हुंति ते सव्वे ।
एकम्मि पूइयम्मि, पूइया हुंति सव्वे ॥३०॥

४६९. विणओ सासणे मूलं, विणीओ संजओ भवे ।
विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो ? ॥३१॥

४७०. विणओ मोक्खद्दारं, विणयादो संजमो तवो णाणं ।
विणएणाराहिज्जदि, आइरिओ सव्वसंघो य ॥३२॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो दोष को प्रकट ना करता, छुपाता,
मायाभिभूत यति भी अति दुःख पाता।
दोषाभिभूत मन को गुरु को दिखाओ,
निःशल्य हो विमल हो सुख-शांति पाओ ॥४६४॥

आत्मीय सर्व परिणाम विराम पावें,
दे साम्य के सदन में सहसा सुहावें।
डूबो लखो वहुत भीतर चेतना में,
आलोचना वस यही जिन-देशना में ॥४६५॥

प्रत्यक्ष, सम्मुख सुधी गुरु सन्त आते,
होना खड़े, कर जुड़े शिर को झुकाते।
दे आसनादि करना गुरुभक्ति सेवा,
माना गया विनय का तप ओ सदैवा ॥४६६॥

चारित्र, ज्ञान, तप, दर्शन, औपचारो,
ये पाँच हैं विनय भेद, प्रमोदकारो।
धारो इन्हें विमल-निर्मल जीव होगा,
दुःखावसान, सुख आगम शीघ्र होगा ॥४६७॥

है एक का वह समादर सर्व का है,
तो एक का यह अनादर विश्व का है।
हो घात मूल पर तो द्रुम सूखता है,
दो मूल में सलिल, पूरण फूलता है ॥४६८॥

है मूल ही विनय आर्हत शासनों का,
हो संयमी विनय से घर सद्गुणों का।
वे धर्म-कर्म तप भी उनके वृथा हैं,
जो दूर हैं विनय से सहते व्यथा हैं ॥४६९॥

उद्धार का विनय द्वार उदार भाता,
होता यही सुतप संयम-बोध धाता।
आचार्य संघभर की इससे सदा रहो,
आराधना, विनय से सुख-सम्पदा हो ॥४७०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४७१. विणयाहीहा विज्जा, देंति फलं इह परे य लोगम्मि ।
न फलंति विणयहीणा, सस्साणि व तोयहीणाइं ॥३३॥

४७२. तम्हा सव्वपयत्ते, विणीयत्तं मा कदाइ छंडेज्जा ।
अप्पसुदो वि य पुरिसो, खवेदी कम्माणि विणएण ॥३४॥

४७३. सेज्जोगासणिसेज्जो, तहोवहिपडिलेहणाहि उवग्गहिदे ।
आहारोसहवायण-विकिंचणं वंदणादीहिं ॥३५॥

४७४. अद्धाणतेणसावद-रायणदीरोधणासिवे ओमे ।
वेज्जावच्चं उत्तं, संगहसारक्खणोवेदं ॥३६॥

४७५. परियट्टणा य वायणा, पडिच्छणाणुवेहणा य धम्मकहा ।
थुदिमंगलसंजुत्तो, पंचविहो होइ सज्झाओ ॥३७॥

४७६. पूयादिसु णिरवेक्खो, जिण-सत्थं जो पढेइ भत्तीए ।
कम्ममल-सोहणट्ठं, सुयलाहो सुहयरो तस्स ॥३८॥

४७७. सज्झायं जाणंतो, पंचिंदियसंवुडो तिगुत्तो य ।
होइ य एकग्गमणो, विणएण समाहिओ साहू ॥३९॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्या मिली विनय से इस लोक में भी,
देती सही सुख वहाँ परलोक में भी ।
विद्या न पै विनय-शून्य सुखी बनाती,
शाली, बिना जल कभी फल फूल लाती ? ।।४७१।।

अल्पज्ञ किन्तु विनयी मुनि मुक्ति पाता,
दुष्टाष्ट कर्म दल को पल में मिटाता ।
भाई अतः विनय को तज ना कदापि,
सच्ची सुधा समझ के उसको सदा पी ।।४७२।।

जो अन्न पान शयनासन आदिकों को,
देना यथा समय सज्जन साधुओं को ।
कारुण्य द्योतक यही भवताप हारी,
सेवामयी सुतप है शिवसौख्यकारी ।।४७३।।

साधू विहार करते करते थके हो,
वार्धक्य की अवधि पै बस आ रुके हो ।
खानादि से व्यथित हो नृप से पिटायें,
दुर्भिक्षरोग वश पीड़ित हो सतायें ।।
रक्षा संभाल करना उनकी सदैवा,
जाता कहा "सुतप" तापस साधु सेवा ।।४७४।।

सद् वाचना प्रथम है फिर पूछना है,
है आनुप्रेक्ष क्रमशः परिवर्तना है ।
धर्मोपदेश सुखदायक है सुधा है,
स्वाध्याय रूप तप पावन पंचधा है ।।४७५।।

आमूलतः बल लगा विधि को मिटाने,
पै ख्याति-लाभ-यश-पूजन को न पाने ।
सिद्धान्त का मनन जो करता-कराता,
पा तत्त्वबोध बनता सुखधाम, धाता ।।४७६।।

होते नितान्त समलंकृत गुप्तियों से,
तल्लीन भी विनय में मृदु वल्लियों से ।
एकाग्र मानस जितेंद्रिय अक्ष-जेता,
स्वाध्याय के रसिक वे ऋषि साधु नेता ।।४७७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४७८. णाणेण ज्झाणसिज्झी, झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं ।
णिज्जरणफलं मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा ॥४०॥

४७९. बारसविहम्मि वि तवे, अब्भिंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे ।
न वि अत्थि न वि य होही, सज्झायसमं तवकम्मं ॥४१॥

४८०. सयणासणठाणे वा, जे उ भिक्खू न वावर ।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥४२॥

४८१. देहमइजड्डसुद्धी, सुहदुक्खतितिक्खया अणुप्पेहा ।
झायइ य सुहं झाणं, एगग्गो काउसग्गम्मि ।४३॥

४८२. तेंसि तु तवो णं सुद्धो, निक्खंता जे महाकुला ।
जं नेवन्ने वियाणंति, न सिलोगं पवेज्जइ ॥४४॥

४८३. नाणमयवायसहिओ, सीलुज्जलिओ तवो मओ अग्गी ।
संसारकरणबीयं, दहइ दवग्गी व तणरासिं ॥४५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्ध्यान सिद्धि जिन आगम ज्ञान से हो,
तो निर्जरा करम की निज ध्यान से हो।
हो मोक्ष-लाभ सहसा विधि निर्जरा से,
स्वाध्याय में इसलिए रम जा जरा से ॥४७८॥

स्वाध्याय-सा न तप है नहिं था न होगा,
यों मानना अनुपयुक्त कभी न होगा।
सारे इसे इसलिए ऋषि सन्त त्यागी,
धारें, वनें विगतमोह, वनें विरागी ॥४७९॥

जो बैठना शयन भी करना तथापि,
चेष्टा न व्यर्थ तन की करना कदापि।
व्युत्सर्गरूप तप है, विधि को तपाता,
पीताभ हेम-सम आतम को वनाता ॥४८०॥

कायोतसर्ग तप से मिटती व्यथायें,
हो ध्यान चित्त स्थिर द्वादश भावनायें।
काया निरोग वनती मति जाड्य जाती,
संत्रास सौख्य सहने उर शक्ति आती ॥४८१॥

लोकेषनार्थं तपते उन साधुओं का,
ना शुद्ध हो तप महाकुल धारियों का।
शंसा अतः न अपने तप की करो रे,
जाने न अन्य जन यों तप धार लो रे ॥४८२॥

स्वामी समाहत विबोध सुवात से है,
उद्दीप्त भी तपहुताशन, शील से है।
वैसा कुकर्म वन को पल में जलाता,
जैसा वनानल घने वन को जलाता ॥४८३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## २९. ध्यान सूत्र

४८४. सीसं जहा सरीरस्स, जहा मूलं, दुमस्स य ।
सव्वस्स साधुधम्मस्स, तहा झाणं विधीयते ॥१॥

४८५. जं थिरमज्झवसाणं, तं झाणं जं चलंतयं चित्तं ।
तं होज्ज भावणा वा, अणुपेहा वा अहव चिंता ॥२॥

४८६. लवण व्व सलिलजोए, झाणे चित्तं विलीयए जस्स ।
तस्स सुहासुहडहणो, अप्पाअणलो पयासेइ ॥३॥

४८७. जस्स न विज्जदि रागो, दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो ।
तस्स सुहासुहडहणो, झाणमओ जायए अग्गी ॥४॥

४८८. पुव्वाभिमुहो उत्तरमुहो व, होऊण सुइ-समायारो ।
झाया समाहिजुत्तो, सहासणत्थो सुइसरीरो ॥५॥

४८९. पलियंकं बंधेउं, निसिद्धमण-वयणकायवावारो ।
नासग्गनिमियनयणो, मंदीकयसासनीसासो ॥६॥

४९०. गरहियनियदुच्चरिओ, खामियसत्तो नियत्तियपमाओ ।
निच्चलचित्तो ता झाहि, जाव पुरओव्व पडिहाइ ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## २९. ध्यान सूत्र

ज्यों मूल, मुख्य द्रुम में जग में कहाता,
या देह में प्रमुख मस्तक है सुहाता।
त्यों ध्यान ही प्रमुख है मुनि के गुणों में,
धर्मों तथा सकल आचरणों व्रतों में ॥४८४॥

सद्ध्यान है मनस की स्थिरता सुधा है,
तो चित्र की चपलता त्रिवली त्रिधा है।
चिंताअनुपेक्ष क्रमशः वह भावना है,
तीनों मिटें बस यही मम कामना है ॥४८५॥

ज्यों नीर में लवण है गल लीन होता,
योगी समाधि सर में लवलीन होता।
अध्यात्मिका धधकती फलरूप (अनिवार्य) ज्वाला
है नाशती द्रुत शुभाशुभ कर्मशाला ॥४८६॥

व्यापार योगत्रय का जिसने हटाया,
संमोह राग रति रोपन को नशाया।
ध्यानाग्नि दीप्त उसमें उठती दिखाती,
है राख खाक करती विधि को मिटाती ॥४८७॥

बैठें करें स्वमुख उत्तर पूर्व में वा,
ध्याता सुधी, स्थित सुखासन से सदैवा।
आदर्श-सा विमल चारित काय वाला,
पीता समाधिरस पूरित पेय प्याला ॥४८८॥

प्रत्यंक आसन लगाकर आत्मध्याता,
नासाग्र को विषय लोचन का बनाता।
व्यापार योगत्रय का कर बन्द ज्ञानी,
उच्छवास श्वास गति मन्द करें अमानी ॥४८९॥

गर्हा दुराचरण की अपनी करो रे,
माँगो क्षमा जगत से मन मार लो रे।
हो अप्रमत्त तव लौं निज आत्म ध्याओ,
प्राचीन कर्म जब लौं तुम ना हटाओ ॥४९०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४९१. थिरकयजोगाणं पुण, मुणीण झाणे सुनिच्चलमणाणं ।
गामम्मि जणाइण्णे, सुण्णे रण्णे व ण विसेसो ॥८॥

४९२. जे इंदियाणं विसया मणुण्णा, न तेसु भावं निसिरे कयाइ ।
न याऽमणुण्णेसु मणं पि कुज्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी ॥९॥

४९३. सुविदियजगस्सभावो, निस्संगो निब्भओ निरासो य ।
वेरग्गभावियमणो, झाणंमि सुनिच्चलो होइ ॥१०॥

४९४. पुरीसायारो अप्पा, जोई वरणाणदंसणमग्गो ।
जो झायदि सो जोई, पावहरो हवदि णिद्दंदो ॥११॥

४९५. देहविवित्तं पेच्छइ, अप्पाणं तह य सव्वसंजोगे ।
देहोवहिवोसग्ग निस्संगो सव्वहा कुणइ ॥१२॥

४९६. णाहं होमि परेसिं, ण मे परे संति णाणमहमेक्को ।
इदि जो झायदि झाणे, सो अप्पाणं हवदि झादा ॥१३॥

४९७. झाणट्ठिओ हु जोई जइणो संवेय णिययअप्पाणं ।
तो ण लहइ तं सुद्धं भग्गविहीणो जहा रयणं ॥१४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निस्पंद योग जिसके, मन मोद पाता,
सद्ध्यान लीन, नहिं बाहर भूल जाता।
ध्यानार्थ ग्राम पुर हो वन काननी हो,
दोनों समान उसको, समता घनी हो ।।४९१।।

पीना समाधि-रस को यदि चाहते हो,
जीना युगों, युगयुगों तक चाहते हो।
अच्छे बुरे विषय ऐंद्रिक हैं तथापि,
ना रोष तोष करना उनमें कदापि ।।४९२।।

निस्संग है निडर नित्य निरीह त्यागी,
वैराग्य-भाव परिपूरित है विरागी।
वैचित्र्य भी विदित है भव का जिन्होंको,
वे ध्यान लीन रहते, भजते गुणों को ।।४९३।।

आत्मा अनन्त दृग, केवल बोधधारी,
आकार से पुरुष शाश्वत सौख्यकारी।
योगी नितान्त उसका उर ध्यान लाता,
निर्द्वन्द्व पूर्ण बनता अघ को हटाता ।।४९४।।

आत्मा तना तन, निकेतन में अपापी,
योगी उसे पृथक से लखते तथापि।
संयोग जन्य तन आदि उपाधियों को,
वे त्याग, आप अपने गुणते गुणों को ।।४९५।।

मेरे नहीं 'पर' यहाँ पर का न मैं हूँ,
हूँ एक हूँ विमल केवल ज्ञान मैं हूँ।
यों ध्यान में सतत् चिंतन जो करेगा,
ध्याता स्व का बन सुमुक्ति रमा वरेगा ।।४९६।।

जो ध्यान में न निजवेदन को करेगा,
योगी निजी–परम तत्त्व नहीं गहेगा।
सौभाग्य-हीन नर क्या निधि पा सकेगा?
दुर्भाग्य से दुखित हो नित रो सकेगा ।।४९७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४९८. भावेज्ज अवत्थतियं, पिंडत्थ-पयत्थ-रूवरहियत्तं ।
छउमत्थ-केवलित्तं, सिद्धत्तं चेव तस्सत्थो ।।१५।।

४९९. अवि झाइ से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं ।
उड्ढमहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिण्णे ।।१६।।

५००. णातीतमट्ठं ण य आगमिस्सं, अट्ठं नियच्छंति तहागया उ ।
विधूतकप्पे एयाणुपस्सी, णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी ।।१७।।

५०१. मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिन्तह किं वि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ।।१८।।

५०२. न कसायसमुत्थेहि य, वहिज्जइ माणसेहिं दुक्खेहिं ।
ईसा-विसाय-सोगा-इएहिं, झाणोवगयचित्तो ।।१९।।

५०३. चालिज्जइ बीभेइ य, धीरो न परीसहोवसग्गेहिं ।
सुहुमेसु न संमुच्छइ, भावेसु न देवमायासु ।।२०।।

५०४. जह चिरसंचियमिंधण-मनलो पवणसहिओ दुयं दहइ ।
तह कम्मेंधणममियं, खणेण झाणानलो डहइ ।।२१।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिण्डस्थ आदिम पदस्थन, रूपहीन,
है ध्यान तीन इनमें तुम हो विलीन।
छद्मस्थता-सुजिनता, शिवसिद्धिता ये,
तीनों हि तत् विषय हैं क्रमशः सुहायें ।।४९८।।

खड्गासनादिक लगा युगवीर स्वामी,
थे ध्यान में निरत अंतिम तीर्थ नामी।
वे श्वभ्र स्वर्गगत दृश्य निहारते थे,
संकल्प के विन समाधि सुधारते थे ।।४९९।।

भोगों, अनागत गतों व तथागतों की,
कांक्षा जिन्हें न स्मृति, क्यों ? फिर आगतों की।
ऐसे महर्षि जन कार्मिक्र काय को ही,
क्षीणातिक्षीण करते, वनते विमोही ।।५००।।

चिंता करो न कुछ भी मन से न डोलो,
चेष्टा करो न तन से मुख से न बोलो।
यों योग में गिरि वनो, शुभ ध्यान होता,
आत्मा निजात्मरत हो सुख बीज बोता ।।५०१।।

है ध्यान में रम रहा सुख पा रहा है,
शुद्धात्म ही वस जिसे अति भा रहा है।
पाके कषाय न कदापि दुखी वनेगा,
ईर्षा विषाद मद शोक नहीं करेगा ।।५०२।।

वे धीर साधु उपसर्ग परिषहों से,
होते न भीरु चिगते अपने पदों से।
मायामयी अमर सम्पद वैभवों में,
ना मुग्ध लुब्ध वनते निज ऋद्धियों में ।।५०३।।

वर्षों पड़ा वहुत सा तृण ढेर चारा,
ज्यों अग्नि से झट जले विन देर सारा।
त्यों शीघ्र ही भव भवार्जित कर्म कूड़ा,
ध्यानाग्नि से जल मिटे सुन भव्यमूढ़ा ।।५०४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ३०. अनुप्रेक्षा सूत्र

५०५. झाणोवरमेऽवि मुणी, णिच्चमणिच्चाइभावणापरमो ।
होइ सुभावियचित्तो, धम्मज्झाणेण जो पुव्वि ॥१॥

५०६. अद्‌धुवमसरणमेगत्त-मन्नत्तसंसारलोयमसुइत्तं ।
आसवसंवरणिज्जर, धम्मं बोधिं च चिंतिज्ज ॥२॥

५०७. जम्मं मरणेण समं, संपज्जइ जोव्वणं जरासहियं ।
लच्छी विणास-सहिया, इय सव्वं भंगुर मुणह ॥३॥

५०८. चइऊण महामोहं, विसए मुणिऊण भंगुरे सव्वे ।
णिव्विसयं कुणह मणं, जेण सुहं उत्तमं लहह ॥४॥

५०९. वित्तं पसवो य णाइओ, तं बाले सरणं ति मण्णइ ।
एए मम तेसिं वा अहं, णो ताणं सरणं ण विज्जई ॥५॥

५१०. संगं परिजाणामि, सल्लं पि य उद्धरामि तिविहेणं ।
गुत्तीओ समिईओ, मज्झं ताणं च सरणं च ॥६॥

५११. धी संसारो जहियं, जुवाणओ परमरूवगव्वियओ ।
मरिऊण जायइ, किमी तत्थेव कलेवरे नियए ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## (३०) अनुप्रेक्षा सूत्र

स्वाधीन चित्त कर तू शुभ ध्यान द्वारा,
कर्त्तव्य आदिम यही मुनि भव्य प्यारा।
सद्ध्यान संतुलित होकर भी सदा रे,
भ्रात्ट भाव से सुखद द्वादश भावनायें ॥५०५॥

संसार, लोक, वृष, आस्रव, निर्जरा है,
अन्यत्व औ अशुचि, अध्रुव संवरा है।
एकत्व औ अशरणा अवबोधना ये,
भावें सुधी सतत द्वादश भावनायें ॥५०६॥

है जन्म से मरण भी वह जन्म लेता,
वार्धक्य भी सतत यौवन साथ देता।
लक्ष्मी अतीव चपला विजली वनी है,
संसार ही तरल है स्थिर ही नहीं है ॥५०७॥

हे ! भव्य मोह-घट को झट पूर्ण फोड़ो,
सद्यःक्षयी विषय को विष मान छोड़ो।
औ चित्त को सहज निर्विषयी वनाओ,
औचित्य पूर्ण परमोत्तम सौख्य पाओ ॥५०८॥

अल्पज्ञ हो परिजनों धन-वैभवों को,
है मानता 'शरण' पाशव गोधनों को।
ये हैं मदीय यह मैं उनका वताता,
पै वस्तुतः शरण वे नहि प्राण त्राता ॥५०९॥

मैं संग शल्य त्रय को त्रययोग द्वारा,
हूँ हेय जान तजता जड़ के विकारा।
मेरे लिए शरण त्राण प्रमाण प्यारी,
हैं गुप्तियाँ समितियाँ भव-दुःखहारी ॥५१०॥

लावण्य का मद युवा करते सभी हैं,
पै मृत्यु पा उपजते कृमि हो वहीं है।
संसार को इसलिए बुध सन्त त्यागी,
धिक्कारते न रमते उसमें विरागी ॥५११॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५१२. सो नत्थि इहोगासो, लोए वालग्गकोडिमित्तोऽवि ।
जम्मणमरणाबाहा, अणेगसो जत्थ न य पत्ता ॥८॥

५१३. बाहिजरमरणमयरो, निरंतरुप्पत्तिनीरनिकुरुंबो ।
परिणामदारुणदुहो, अहो दुरंतो भवसमुद्दो ॥९॥

५१४. रयणत्तय-संजुत्तो, जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं ।
संसारं तरइ जदो, रयणत्तय-दिव्व-णावाए ॥१०॥

५१५. पत्तेयं पत्तेयं नियगं, कम्मफलमणुहवंताणं ।
को कस्स जए सयणो ? को कस्स व परजणो भणिओ ? ॥११॥

५१६. एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ॥१२॥

५१७. संजोगमूला जीवेणं, पत्ता दुक्खपरंपरा ।
तम्हा संजोगसंबंधं, सव्वभावेण वोसिरे ॥१३॥

५१८. अणुसोअइ अन्नजणं, अन्नभवंतरगयं तु बालजणो ।
नवि सोयइ अप्पाणं, किलिस्समाणं भवसमुद्दे ॥१४॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा न लोक-भर में थल ही रहा हो,
मैंने न जन्म मृत दुःख जहाँ सहा हो।
तू वार-वार तन धार मरा यहाँ है,
तू ही वता स्मृति तुझे उसकी कहाँ है ।।५१२।।

दुर्लंघ्य है भवपयोधि अहो अपारा,
अक्षुण्ण जन्म जल पूरित पूर्ण खारा।
भारी, जरा मगर मच्छ यहाँ सताते,
है दुःख पाक, इसका गुरु हैं वताते ।।५१३।।

जो साधु रत्नत्रय मंडित हो सुहाता,
संसार में परम तीर्थ वही कहाता।
संसार पार करता, लख क्योंकि नौका,
हो रूढ़ रत्न त्रय रूप अनूप नौका ।।५१४।।

हे ! मित्र आप अपने विधि के फलों को,
है भोगते सकल जीव शुभाशुभों को।
तो कौन हो स्वजन ? कौन निरा पराया ?
तू ही वता समझ में मुझको न आया ।।५१५।।

पूरा भरा दृग विबोध मयी सुधा से,
मैं एक शाश्वत सुधाकर हूँ सदा से।
संयोगजन्य सव शेष विभाव मेरे,
रागादि भाव जितने मुझसे निरे रे ।।५१६।।

संयोग भाव वश ही वहु दुःख पाया ?
हूँ कर्म के तपन तप्त गया सताया।
त्यागूं उसे यतन से अव चाव से मैं,
विश्राम लूं सघन चेतन छाँव में मैं ।।५१७।।

तूनं भवाम्बुनिधि मज्जित आतमा की,
चिंता न की न अवलौं उसपै दया की।
पै बार-वार करता मृत साथियों की,
चिंता दिवंगत हुए उन बंधुओं की ।।५१८।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५१९. अन्नं इमं सरीरं, अन्नोऽहं बंधवाविमे अन्ने।
एवं नाऊण खमं, कुसलस्स न तं खमं काउं? ॥१५॥

५२०. जो जाणिऊण देहं, जीवसरूवादु तच्चदो भिन्नं।
अप्पाणं पि य सेवदि, कज्जकरं तस्स अण्णत्तं ॥१६॥

५२१. मंसट्ठियसंघाए, मुत्तपुरीसभरिए नवच्छिद्दे।
असुइं परिस्सवंते, सुहं सरीरम्मि किं अत्थि? ॥१७॥

५२२. एदे मोहय-भावा, जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो।
हेयं ति मन्नमाणो, आसवअणुवेहणं तस्स ॥१८॥

५२३. मणवयणकायगुत्ति–दियस्स समिदीसु अप्पमत्तस्स।
आसवदारणिरोहे, णवकम्मरयासवो ण हवे ॥१९॥

५२४. णाऊण लोगसारं, णिस्सारं दीहगमणसंसारं।
लोयग्गसिहरवासं झाहि पयत्तेण सुहवासं ॥२०॥

५२५. जरामरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥२१॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं अन्य हूँ तन निरा, तन से न नाता,
ये सर्व भिन्न मुझसे सुत, तात, माता।
यों जान मान बुध पंडित साधु सारे,
धारें न राग इनमें, निज को निहारें ।।५१९।।

शुद्धात्म वेदन तथा सम दृष्टि वाला,
है वस्तुतः निरखता तनको निराला।
अन्यत्व रूप उसकी वह भावना है,
भाऊँ उसे जब मुझे व्रत पालना है ।।५२०।।

निष्पन्न है जड़मयी पल हड्डियों से,
पूरा भरा रुधिर मूत्र-मलादिकों से।
दुर्गन्ध द्रव्य झरते नव द्वार द्वारा,
ऐसा शरीर फिर भी सुख दें तुम्हारा? ।।५२१।।

जो मोह जन्य जड़ भाव विभाव सारे,
हैं त्याज्य यों समझ साधु उन्हें विसारे।
तल्लीन हो प्रशम में तज वासना को,
भावें सही परम आस्रव भावना को ।।५२२।।

वु गुप्ति औ समिति पालक अक्ष जेता,
औ अप्रमत्त परमातमतत्व वेत्ता।
हैं कर्म के विविध आस्रव रोध पाते,
है भावना परम संवर की निभाते ।।५२३।।

है लोक का यह वितान असार सारा,
संसार तीव्र गति से गममान न्यारा।
यों जान मान मुनि हो शुभ ध्यान धारो,
लोकाग्र में स्थित शिवालय को निहारो ।।५२४।।

स्वामी जरा मरण-वारिधि में अनेकों,
जो डूबते वह रहें अनप्राणियों को।
सद्धर्म ही शरण है जागति, श्रेय द्वीप,
पूजूँ उसे शिव लसे सहसा समीप ।।५२५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५२६. माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं ॥२२॥

५२७. आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा नेआउयं मग्गं, बहवे परिभस्सई ॥२३॥

५२८. सुइं च लद्धं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि, नो एणं पडिवज्जए ॥२४॥

५२९. भावणाजोग-सुद्धप्पा, जले णावा व आहिया ।
नावा व तीरसंपण्णा, सव्वदुक्खा तिउट्टइ ॥२५॥

५३०. बारस अणुवेक्खाओ, पच्चक्खाणं तहेव पडिक्कमणं ।
आलोयणं समाही, तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं ॥२६॥

## २०. लेश्या सूत्र

५३१. होंति कम्मविसुद्धाओ, लेसाओ पीयपम्हसुक्काओ ।
धम्मज्झाणोवगयस्स, तिव्व-मंदाइभेयाओ ॥१॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो भी रहा सुलभ ही वर देह पाना,
पै धर्मका श्रवण दुर्लभ है पचाना।
हो जाय प्राप्त जिससे कि क्षमा अहिंसा,
ये भिन्न-भिन्न वन जाय शरीर, हंसा ।।५२६।।

सद्धर्म का सुलभ है सुनना-सुनाना,
श्रद्धान पै कठिन है उसपै जमाना।
सन्मार्ग का श्रवण भी करते तथापि,
होते कई स्खलित हैं मतिमूढ़ पापी ।।५२७।।

श्रद्धान औ श्रवण भी जिनधर्म का हो ?
पै संयमाचरण तो अति दुर्लभा हो।
लेते सुधी रुचि सुसंयम में कई हैं,
पाते तथापि उसको सहसा नहीं हैं ।।५२८।।

सद्भावना वश निजातम शोभती त्यों,
निःसिद्ध नाव जल में वह शोभती ज्यों।
नौका समान भव पार उतारती है,
ये ! भावना अमित दुःख विनाशती हैं ।।५२९।।

सच्चा प्रतिक्रमण, द्वादश भावनायें,
आलोचना शुचि समाधि निजी कथायें।
भावो इन्हें, तुम निरन्तर पाप त्यागो,
शीघ्रातिशीघ्र जिससे निज धाम भागो ।।५३०।।

## (३१) लेश्या सूत्र

ये पीत, पद्म शशि शुक्ल सुलेश्यकायें,
हैं धर्म ध्यान रत आतम की दशायें।
औ उत्तरोत्तर सुनिर्मल भी रही है,
मन्दादि भेद इनके मिलते कई हैं ।।५३१।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५३२. जोगपउत्ती लेस्सा, कसायउदयाणुरंजिया होई ।
तत्तो दोण्हं कज्जं, बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ॥२॥

५३३. किण्हा णीला काऊ, तेऊ पम्हा य सुक्कलेस्सा य ।
लेस्साणं णिद्देसा, छच्चेव हवंति णियमेण ॥३॥

५३४. किण्हा नीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जई बहुसो ॥४॥

५३५. तेऊ पम्हा सुक्का, तिण्णि वि एयाओ धम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई बहुसो ॥५॥

५३६. तिव्वतमा तिव्वतरा, तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा, छट्ठाणगया हु पत्तेयं ॥६॥

५३७. पहिया जे छ प्पुरिसा, परिभट्ठारण्णमज्झदेसम्हि ।
फलभरियरुक्खमेगं, पेक्खित्ता ते विचिंतंति ॥७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती कषाय वश योग प्रवृत्ति लेश्या,
है लूटती निधि सभी जिस भाँति वेश्या।
जो कर्म बन्ध जग चार प्रकार का है,
हे मित्र! कार्य वह योग कषाय का है ।।५३२।।

है कृष्ण नीलम कपोत कुलेश्यकायें,
है पीत पद्म सित तीन सुलेश्यकायें।
लेश्या कही समय में छह भेद वाली,
ज्यों ही मिटी समझलो मिटती भवाली ।।५३३।।

मानी गई अशुभ आदिम लेश्यकायें,
तीनों अधर्म मय हैं दुःख आपदायें।
आत्मा इन्हीं वश दुखी बनता वृथा है,
पापी बना, कुगति जा सहता व्यथा है ।।५३४।।

है तीन धर्ममय अंतिम लेश्यकायें,
मानी गई शुभ सुधा सुख सम्पदायें।
ये जीव को सुगति में सब भेजती हैं,
वे धारते नित इन्हें जगमें व्रती हैं ।।५३५।।

है तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतमा कुलेश्या,
है मन्द, मन्दतर, मन्दतमा सुलेश्या।
भाई तथैव छह थान विनाश वृद्धि,
प्रत्येक में वरतती इनमें, सुबुद्धि ।।५३६।।

भूले हुए पथिक थे, पथ को मुधा से,
थे आर्त्त पीड़ित छहों वन में क्षुधा से।
देखा रसाल तरु फूल फलों लदा था,
मानो उन्हें कि अशनार्थ बुला रहा था ।।५३७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५३८. णिम्मूलखंधसाहु-वसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।
खाउं फलाइं इदि, जं मणेण वयणं हवे कम्मं ।।८।।

५३९. चंडो ण मुंचइ वेरं, भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।
दुट्ठो ण य एदि वसं, लक्खणमेयं तु किण्हस्स ।।९।।

५४०. मंदो बुद्धिविहीणो, णिव्विणाणी य विसयलोलो य ।
लक्खणमेयं भणियं, समासदो णीललेस्सस्स ।।१०।।

५४१. रूसइ णिंदइ अन्ने, दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो ।
ण गणइ कज्जाकज्जं, लक्खणमेयं तु काउस्स ।।११।।

५४२. जाणइ कज्जाकज्जं, सेयमसेयं च सव्वसमपासी ।
दयदाणरदो य मिदू, लक्खणमेयं तु तेउस्स ।।१२।।

५४३. चागी भद्दो चोक्खो, अज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि ।
साहुगुरुपूजणरदो, लक्खणमेयं तु पम्मस्स ।।१३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आमूल स्कन्ध टहनी झट काट डाले,
औ तोड़, तोड़ फल फूल रसाल खालें।
यों तीन दीन क्रमशः धरते कुलेश्या,
है सोचते कह रहे कर संकलेशा ।।५३७

है एक गुच्छ-भर को इक पक्व पाता,
तोड़े विना पतित को इक मात्र खाता।
यों शेष तीन क्रमशः धरते सुलेश्या,
लेश्या उदाहरण ये कहते जिनेशा ।।५३८।।

य क्रूरता अतिदुराग्रह दुष्टतायें,
सद्धर्म की विकलता अदया दशायें।
वैरत्व औ कलह भाव विभाव सारे,
है कृष्ण के दुःखद लक्षण, साधु टारे ।।५३९।।

अज्ञानता विषय की अतिगृद्धतायें,
सद्वुद्धि की विकलता मतिमन्दतायें।
संक्षेप में समझ, लक्षण नील के हैं,
ऐसे कहे, श्रमण आलय शील के हैं ।।५४०।।

अत्यन्त शोक करना, भयभीत होना,
कर्त्तव्यमूढ़ वनना, झट रुष्ट होना।
दोषी व निन्द्य पर को कहना वताना,
कापोत भाव सब ये इनको हटाना ।।५४१।।

आदेय, हेय अहिताहित-बोध होना,
संसारि-प्राणि भर में समभाव होना।
दानी तथा सदय हो पर दुःख खोना,
ये पीत लक्षण इन्हें तुम धार लो ना ।।५४२।।

हो त्याग भाव, नयता व्यवहार में हो,
औ भद्रता, सरलता, उर कार्य में हो।
कर्त्तव्य मान करना गुरुभक्ति सेवा,
ये पद्म लक्षण क्षमा धरलो सदैवा ।।५४३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५४४. ण य कुणइ पक्खवायं, ण वि य णिदाणं समो य सव्वेंसि ।
णत्थि य रायद्दोसा, णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स ॥१४॥

५४५. लेस्सासोधी अज्झवसाणविसोधीए होइ जीवस्स ।
अज्झवसाणविसोधि, मंदकसायस्स णायव्वा ॥१५॥

## ३२. आत्मविकास सूत्र (गुणस्थान)

५४६. जेहिं दु लक्खिज्जंते, उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं ।
जीवा ते गुणसण्णा, णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥१॥

५४७. मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदो पमत्त इयरो, अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य ॥२॥

५४८. उवसंत खीणमोहो, सजोगिकेवलिजिणो अजोगी य ।
चोद्दस गुणट्ठाणाणि य, कमेण सिद्धा य णायव्वा ॥३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगाभिलाष मन में न कदापि लाना,
औ देह-नेह रति-रोषन को हटाना।
ना पक्षपात करना समता सभी में,
ये शुक्ल लक्षण मिलें मुनि में सुधी में ॥५४४॥

आ जाय शुद्धि परिणाम मन में जभी से,
लेश्या विशुद्ध वनती, सहसा तभी से।
काषाय मन्द पड़ जाय अशान्ति दाई,
हो जाय आत्म परिणाम विशुद्ध भाई ॥५४५॥

## ३२. आत्मविकास सूत्र (गुणस्थान)

संमोह यसेग वश आतम में अनेकों,
होते विचित्र परिणाम विकार देखो।
सर्वज्ञ-देव 'गुणधाम' उन्हें वताया,
आलोक से सकल को जव देख पाया ॥५४६॥

मिथ्यात्व आदिम रहा गुणथान भाई,
सासादना वह द्वितीय अशान्ति दाई।
है मिश्र है अवरिती समदृष्टि प्यारी,
है एक देश विरती धरते अगारी।

होती प्रमत्त विरती गिर साधु जाता,
हो प्रमत्त विरती निज पास आता।
स्वामी अपूर्व करुणा दुःख को मिटाती,
है आनिवृत्तिकरुणा सुख को दिलाती।

है सांपराय अति सूक्षम लोभ वाला,
है शान्त मोह गत मोह निरा उजाला।
है केवली जिन सयोगि अयोगि न्यारे,
इत्थं चतुर्दश सुनो ! गुणथान सारे ॥५४७-५४८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५४९. तं मिच्छत्तं जमसद्दहणं, तच्चाण होदि अत्थाणं।
संसइदमभिग्गहियं, अणभिग्गहियं तु तं तिविहं ॥४॥

५५०. सम्मत्तरयणपव्वय-सिहरादो मिच्छभावसमभिमुहो।
णासियसम्मत्तो सो, सासणणामो मुणेयव्वो ॥५॥

५५१. दहिगुडमिव व मिस्सं, पिहुभावं णेव कारिदुं सक्कं।
एवं मिस्सयभावो, सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो ॥६॥

५५२. णो इंदिएसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे चावि।
जो सद्दहइ जिणत्तं, सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥७॥

५५३. जो तसवहाउविरदो, णो विरओ एत्थ-थावरवहाओ।
पडिसमयं सो जीवो, विरयाविरओ जिणेक्कमई ॥८॥

५५४. वत्तावत्तपमाए, जो वसइ पमत्तसंजओ होइ।
सयलगुणसीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो ॥९॥

५५५. णट्ठासेसपमाओ, वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी।
अणुवसमओ अखवओ, झाणणिलीणो हु अप्पमत्तो सो ॥१०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वार्थ में न करना शुचिरूप श्रद्धा,
मिथ्यात्व है वह, कहे जिन शुद्ध बुद्धा।
मिथ्यात्व भी त्रिविध संशय नामवाला,
दूजा गृहीत, अगृहीत तृतीय हाला ।।५४९।।

सम्यक्त्व रूप गिरि से गिर तो गई है,
मिथ्यात्व की अवनि पै नहिं आ गई है।
सासादना यह रही निचली दशा है,
मिथ्यात्व की अभिमुखी दु:ख की निशा है ।।५५०।।

जैसा दही-गुड़ मिलाकर स्वाद लोगे,
तो भिन्न-भिन्न तुम स्वाद न ले सकोगे।
वैसा हि मिश्र गुणथानक का प्रभाव,
मिथ्यापना समपनाश्रित मिश्रभाव ।।५५१।।

छोड़ी अभी नहिं चराचर जीव हिंसा,
ना इन्द्रियाँ दमित कीं तज भावहिंसा ।
श्रद्धा परन्तु जिसने जिन में जमाई,
होता वही अविरती समदृष्टि भाई ।।५५२।।

छोड़ी नितान्त जिसने त्रसजीव हिंसा,
छोड़ी परन्तु नहिं थावर जीव-हिंसा।
लेता सदा जिनप पाद पयोज स्वाद,
हो एक देश 'विरती' 'अलि' निर्विवाद ।।५५३।।

धारा महाव्रत सभी जिसने तथापि,
प्राय: प्रमाद करता फिर भी अपापी ।
शीलादि सर्व गुण धारक संगत्यागी,
होता प्रमत्त विरती कुछ दोष भागी ।।५५४।।

शीलाभिमंडित, व्रती गुण धार ज्ञानी,
त्यागा प्रमाद जिसने वन आत्मध्यानी।
पै मोह को नहिं दवा न खपा रहा है,
है अमत्त विरती, सुख पा रहा है ।।५५५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५५६. एयम्मि गुणट्ठाणे, विसरिससमयट्ठिएहिं जीवेहिं।
पुव्वमपत्ता जम्हा, होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥११॥

५५७. तारिसपरिणामट्ठियजीवा, हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं।
मोहस्सऽपुव्वकरणा, खवणुवसमणुज्जया भणिया ॥१२॥

५५८. होंति अणियट्टिणो ते, पडिसमयं जेसिमेक्कपरिणामा।
विमलयरझाणहुयवह-सिहाहिं णिद्दड्ढकम्मवणा ॥१३॥

५५९. कोसुंभो जिह राओ, अब्भंतरदो य सुहुमरत्तो य।
एवं सुहुमसराओ, सुहुमकसाओ त्ति णायव्वो ॥१४॥

५६०. सकदकफलजलं वा, सरए सरवाणियं व णिम्मलयं।
सयलोवसंतमोहो, उवसंतकसायओ होदि ॥१५॥

५६१. णिस्सेसखीणमोहो; फलिहामलभायणुदय-समचित्तो।
खीणकसाओ भण्णइ, णिग्गंथो वीयराएहिं ॥१६॥

५६२. केवलणाणदिवायर-किरणकलाव-प्पणासिअण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गम-पावियपरमप्पववएसो ॥१७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो भिन्न-भिन्न क्षण में चढ़ आठवें में,
योगी अपूर्व परिणाम करे मजे में।
ऐसे अपूर्व परिणाम न पूर्व में हो,
वे ही अपूर्व करणा गुणथान में हो ।।५५६।।

जो भी अपूर्व परिणाम सुधार पाते,
वे मोह के शमक, ध्वंसक या कहाते।
ऐसा जिनेन्द्र प्रभु ने हमको वताया,
अज्ञानरूप मत को जिसने मिटाया ।।५५७।।

प्रत्येक काल इक ही परिणाम पाले,
वे आनिवृत्ति करणा गुणथान वाले।
ध्यानाग्नि से धधकती विधिकाननी को,
है राख खाक करते, दुःख की जनी को ।।५५८।।

कौसुम्भ के सदृश्य सौम्य गुलाव आभा,
शोभायमान जिसके उर राग आभा।
है सूक्ष्मराग दशवें गुणथान वाले,
वे वन्द्य, तू विनय से शिर तो नवां ले ।।५५९।।

ज्यों शुद्ध है शरद में सरनीर होता,
या निर्मली फल डला जलक्षीर होता।
त्यों शान्त मोह गुणधारक हो निहाला,
हो मोह सत्व, पर जीवन तो उजाला ।।५६०।।

सम्मोह हीन जिसका मन ठीक वैसा,
हो स्वच्छ, हो स्फटिक भाजन नीर जैसा।
निर्ग्रन्थ साधु वह क्षीण कषाय नामी,
यों वीतराग कहते प्रभु विश्व स्वामी ।।५६१।।

कैवल्य बोधरवि जीवन में उगा है,
अज्ञानरूप तम तो फलतः भगा है।
पा लब्धियाँ नव-नवीन वही कहाता,
त्रैलोक्य पूज्य परमातम या प्रमाता ।।५६२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५६३. असहायणाणदंसण-सहिओ वि हु केवली हु जोएण ।
जुत्तो त्ति सजोइजिणो, अणाइणिहणारिसे वुत्तो ।।१८।।

५६४. सेलेसिं संपत्तो, णिरुद्धणिस्सेस-आसओ जीवो ।
कम्मरयविप्पमुक्को, गयजोगो केवली होइ ।।१९।।

५६५. सो तम्मि चेव समये, लोयग्गे उड्ढगमणसब्भाओ ।
संचिट्ठइ असरीरो, पवरट्ठ गुणप्पओ णिच्चं ।।२०।।

५६६. अट्ठविहकम्मवियडा, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा कयकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ।।२१।।

## ३३. संलेखना सूत्र

५६७. सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ।।१।।

५६८. बहिया उड्ढमादाय, नावकंखे कयाइ वि ।
पुव्वकम्मक्खयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ।।२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वाधीन बोध दृग पाकर केवली हैं,
जीता जभी स्वयं को जिन हैं वली हैं।
होता सयोगि जिन योग समेत ध्यानी,
ऐसा कहें अमिट भव्य या आर्षवाणी ॥५६३॥

हैं अष्ट कर्म मलको जिनने हटाया,
सम्यक्तया सकल आस्रव रोक पाया।
वे हैं, अयोगि जिन पावन केवली हैं,
है शील के सदन औ सुख के धनी हैं ॥५६४॥

आत्मा अतीत गुणधान बना जभी से,
सानन्द ऊर्ध्व गति है करता तभी से।
लोकाग्र जा निवसता गुण अष्ट पाता,
पाता न देह, भव में नहिं लौट आता ॥५६५॥

वे सिद्ध, नित्य, कृतकृत्य, सुशान्त ज्ञानी,
होते निरंजन न अंजन की निशानी।
सामान्य अष्टगुण आकर हो लसे हैं,
लोकाग्र में स्थित शिवालय में वसे हैं ॥५६६॥

## ३३. संलेखना सूत्र

भाई सुनो तन अचेतन दिव्य नौका,
तो जीव नाविक सचेतन है अनोखा।
संसार-सागर रहा दुःख पूर्ण खारा,
हैं तैरते ऋषि-महर्षि जिसे सुचारा ॥५६७॥

है लक्ष्यविन्दु यदि शाश्वत सौख्य पाना,
जाना मना विषय में मन को घुलाना।
दे, देह को उचित वेतन तू सयाने,
पाने स्वकीय सुखको विधि को मिटाने ॥५६८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५६९. धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्समरियव्वं।
तम्हा अवस्समरणे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं ॥३॥

५७०. इक्कं पंडियमरणं, छिंदइ जाईसयाणि बहुयाणि।
तं मरणं मरियव्वं, जेण मओ सुम्मओ होइ ॥४॥

५७१. इक्कं पंडियमरणं, पडिवज्जइ सुपुरिसो असंभंतो।
खिप्पं सो मरणाणं, काहिइ अंतं अणंताणं ॥५॥

५७२. चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मन्नमाणो।
लाभंतरे जीविय वूहइत्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी ॥६॥

५७३. तस्स ण कप्पदि भत्त-पइण्णं अणुवट्ठिदे भये पुरदो।
सो मरणं पत्थितो, होदि हु सामण्णणिव्विण्णो ॥७॥

५७४. संलेहणा य दुविहा, अब्भितरिया य बाहिरा चेव।
अब्भितरिया कसाए, बाहिरिया होइ य सरीरे ॥८॥

५७५. कसाए पयणूए किच्चा, अप्पाहारे तितिक्खिए।
अह भिक्खू गिलाएज्जा, आहारस्सेव अन्तियं ॥९॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या धीर; कापुरुष, कायर क्या विचारा,
हो काल का कवल लोक नितान्त सारा।
है मृत्यु का यह नियोग, नहीं टलेगा,
तो धैर्य धार मरना, शिव जो मिलेगा ॥५६९॥

वो एक ही मरण है मुनि पण्डितों का,
है आशु नाश करता शतशः भवों का।
ऐसा अतः मरण हो जिससे तुम्हारा,
जो बार-बार मरना, मर जाय सारा ॥५७०॥

पांडित्य पूर्ण मृति पण्डित साधु पाता,
निर्भ्रान्त हो अभय हो भय को हटाता।
तो एक साथ मरणोदधिपूर्ण पीता,
मृत्युंजयी वन तभी चिरकाल जीता ॥५७१॥

वे साधु वाश समझे लघु दोष को भी,
हो दोष ताकि न, चले रख होश को भी।
सद्धर्म और सधने तनको सभालें,
हो जीर्ण-शीर्ण तन, त्याग स्वगीत गा लें ॥५७२॥

दुर्वार रोग तन में न जरा घिरी हो,
वाधा पवित्र व्रत में नहिं आ परी हो।
तो देह-त्याग न करो, फिर भी करोगे,
साधुत्व त्याग करके, भव में फिरोगे ॥५७३॥

सल्लेखना सुखद है सुख है सुधा है,
जो अंतरंग वहिरंग तया द्विधा है।
अदया, कषाय क्रमशः, कृश ही कराना,
है दूसरी विन व्यथा तनको सुखाना ॥५७४॥

काषायिकी परिणती सहसा हटाते,
आहार अल्प करते क्रमशः घटाते।
सल्लेखना व्रत सुधारक रुग्ण होवे,
तो पूर्ण अन्न तज दे, अति अल्प सोवे ॥५७५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५७६. न वि कारणं तणमओ संथारो, न वि य फासुया भूमी ।
अप्पा खलु संथारो, होइ विसुद्धो मणो जस्स ।।१०।।

५७७. न वि तं सत्थं च विसं च, दुप्पउतु व्व कुणइ वेयालो ।
जंतं व दुप्पउत्तं, सप्पु व्व पमाइणो कुद्धो ।।११।।

५७८. जं कुणइ भावसल्लं, अणुद्धियं उत्तमट्ठकालम्मि ।
दुल्लहबोहीयत्तं अणंतसंसारियत्तं च ।।१२।।

५७९. तो उद्धरंति गारवरहिया, मूलं पुणब्भवलयाणं ।
मिच्छादंसणसल्लं, मायासल्लं नियाणं च ।।१३।।

५८०. मिच्छद्दंसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा, तेंसि दुलहा भवे बोही ।।१४।।

५८१. सम्मद्दंसणरत्ता, अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा, तेंसि सुलहा भवे बोही ।।१५।।

५८२. आराहणाए कज्जे परियम्मं सव्वदा वि कायव्वं ।
परियम्मभाविदस्स हु, सुहसज्झाऽऽराहणा होइ ।।१६।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकान्त प्रासुक धरा, तृण की चटाई,
सन्यस्त के मसृण संस्तर ये न भाई।
आदर्श तुल्य जिसका मनको उजाला,
आत्मा हि संस्तर रहा उसका निहाला ।।५७६।।

हाला तथा कुपित नाग कराल काला,
या भूत, यंत्र, विष निर्मित वाण भाला।
होते अनिष्ट उतने न प्रमादियों के,
निम्नोक्त भाव जितने शठ साधुओं के ।।५७७।।

सल्लेखना समय में तजते न माया,
मिथ्यानिदान त्रय को मन में जमाया।
वे साधु आशु नहिं दुर्लभ बोधि पाते,
पाते अनन्त दुख ही भव को वढ़ाते ।।५७८।।

कामादि शल्य त्रय ही भव वृक्षमूल,
काटें उसे मुनि सुधी, अभिमान भूल।
ऐसे मुनीश पद में नतमाथ होऊं,
पाऊँ पवित्र पद को शिवनाथ होऊँ ।।५७९।।

भोगाभिलाष समवेत कुकृष्ण लेश्या,
हो मृत्यु के समय में जिसको जिनेशा।
मिथ्यात्व कर्दम फँसा उस जीव को ही,
हो बोधि दुर्लभतया, तज मोह मोही ।।५८०।।

प्राणान्त के समय में शुचि, शुक्ल लेश्या,
जो धारता, तज नितान्त दुरन्त क्लेशा।
सम्यक्त्व में निरत नित्य, निदान त्यागी,
पाता वही सहज बोधि व्रती विरागी ।।५८१

सद्बोधि की यदि तुम्हें चिर कामना हो,
ज्ञानादि की सतत सादर साधना हो।
अभ्यास रत्नत्रय का करता, उसी को,
आराधना वरण है करती सुधी को ।।५८२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५८३. जह रायकुलपसूओ, जोग्गं णिच्चमवि कुणइ परिकम्मं ।
तो जिदकरणो जुद्धे, कम्मसमत्थो भविस्सदि हि ॥१७॥

५८४. इय सामण्णं साधूवि, कुणदि णिच्चमवि जोगपरियम्मं ।
तो जिदकरणो मरणे, ज्झाणसमत्थो भविस्सति ॥१८॥

५८५. मोक्खपहे अप्पाणं, ठवेहि तं चेव झाहि तं चेव ।
तत्थेव विहर णिच्चं, मा विहरसु अन्नदव्वेसु ॥१९॥

५८६. इहपरलोगासंस-प्पओग, तह जीयमरणभोगेसु ।
वज्जिज्जा भाविज्ज य, असुहं संसारपरिणामं ॥२०॥

५८७. परदव्वादो दुग्गइ, सद्दव्वादो हु सुग्गई होई ।
इय णाऊ सदव्वे कुणह रई विरई इयरम्मि ॥२१॥

□



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्यों सीखता प्रथम, राजकुमार नाना-
विद्या कला असिगदादिक को चलाना।
पश्चात् वही कुशलता बल योग्य पाता,
तो धीर जीतरिपु को जय लूट लाता ।।५८३।।

अभ्यास भूरि करता शुभ ध्यान का है,
लेता सदैव यदि माध्यम साम्य का है।
तो साधु का सहज हो मन शान्त जाता,
प्राणान्त के समय ध्यान नितान्त पाता ।।५८४।।

ध्याओ निजातम नित ही निजको निहारो,
अन्यत्र छोड़ निजको, न करो विहारो।
सम्बन्ध मोक्ष-पथ से अविलम्ब जोड़ो,
तो आप को नमन हो मम ये करोड़ों ।।५८५।।

साधू करे न मृति जीवन की चिकित्सा,
ना पारलौकिक न लौकिक भोगलिप्सा।
सल्लेखना समय में वस साम्य धारे,
संसार का अशुभ ही फल यों विचारें ।।५८६।।

लेना निजाश्रय सुनिश्चित मोक्षदाता,
होता पराश्रय दुरन्त अशान्ति-धाता।
शुद्धात्म में इसलिए रुचि हो तुम्हारी,
देहादि में अरुचि ही शिव सौख्यकारी ।।५८७।।

## दोहा—द्वितीय खण्ड समाप्त

'मोक्षमार्ग' पर नित चलो दुख मिट, सुख मिल जाय,
परम सुगंधित जान की मृदुल कली खिल जाय ।।१।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



तृतीय खण्ड

# तत्त्व-दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ३४. तत्त्व सूत्र

५८८. जावन्तऽविज्जापुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा।
लुप्पन्ति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणन्तए ॥१॥

५८९. समिक्ख पंडिए तम्हा, पासजाइपहे बहू।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए ॥२॥

५९०. तच्चं तह परमट्ठं, दव्वसहावं तहेव परमपरं।
धेयं सुद्धं परमं, एयट्ठा हुंति अभिहाणा ॥३॥

५९१. जीवाऽजीवा य बन्धो य पुण्णं पावाऽऽसवो तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव ॥४॥

५९२. उवओगलक्खणमणाइ – निहणमत्थंतरं सरीराओ।
जीवमरूविं कारिं, भोयं च सयस्स कम्मस्स ॥५॥

५९३. सुहदुक्खजाणणा वा, हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं, तं समणा विंति अज्जीवं ॥६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ३४. तत्त्व सूत्र

अल्पज्ञ मूढ़ जन ही भजते अविद्या,
होते दुखी, नहि सुखी, तजते सुविद्या।
हो लुप्त गुप्त भव में वहुवार तातैं,
कल्लौल ज्यों उपजते सर में समाते ॥५८८॥

रागादिभाव भव को अघ-पाश माने,
वित्तादि वैभव महा दुःख खान जानें।
औ सत्य तथ्य समझे, जग प्राणियों में,
मैत्री रखे, बुध सदैव चराचरों में ॥५८९॥

जो 'शुद्धता' परम 'द्रव्यस्वभाव' स्थाई,
है 'पारमार्थ' अपरापर ध्येय भाई।
औ वस्तु तत्त्व, सुन ! ये सब शब्द प्यारे,
हैं भिन्न-भिन्न पर आशय एक धारें ॥५९०॥

होते पदार्थ नव, जीव, अजीव न्यारा,
है पुण्य पाप, विधि आस्रव, बंध खारा।
आराध्य है सुखद संवर, निर्जरा है,
आदेय है परम मोक्ष यही खरा है ॥५९१॥

है जीव, शाश्वत अनादि अनन्त ज्ञाता,
भोक्ता तथा स्वयम की विधि के विधाता।
स्वामी सचेतन तभी तन से निराला,
प्यारा अरूप उपयोगमयी निहाला ॥५९२॥

भाई कभी अहित से डरता नहीं है,
उद्योग भी स्वहित का करता नहीं है।
जो बोध दुःख सुखका रखता नहीं है,
है मानते मुनि 'अजीव' उसे सही है ॥५९३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५९४. अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ।।७।।

५९५. नो इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा, अनुत्तभावा वि य होइ निच्चो।
अज्झत्थहेउं निययऽस्स बन्धो, संसारहेउं च वयन्ति बन्धं ।।८।।

५९६. रत्तो वंधदि कम्मं, मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।
एसो बंधसमासो, गीवाणं जाण णिच्छयदो ।।९।।

५९७. तम्हा णिव्वुदिकामो, रागं सव्वत्थ कुणदि मा किंचि।
सो तेण वीदरागो, भवियो भवसायरं तरदि ।।१०।।

५९८. कम्मं पुण्णं पावं, हेऊ तेसिं च होंति सच्छिदरा।
मंदकसाया सच्छा, तिव्वकसाया असच्छा हु ।।११।।

५९९. सव्वत्थ वि पियवयणं, दुव्वयणे दुज्जणे वि खमकरणं।
सव्वेसिं गुणगहणं, मंदकसायाण दिट्ठंता ।।१२।।

६००. अप्पपसंसण-करणं, पुज्जेसु वि दोसगहण-सीलत्तं।
वेरधरणं च सुइरं, तिव्वकसायाण लिंगाणि ।।१३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकाश पुद्गल व धर्म, अधर्म, काल,
ये हैं 'अजीव' सुन तू अयि ! भव्य वाल।
रूपादि चार गुण पुद्गल में दिखाते,
है मूर्त पुद्गल, न शेष, अमूर्त भाते ।।५९४।।

आत्मा अमूर्त, नहिं इंद्रिय गम्य होता,
होता तथापि नित, नूतन ढंग ढोता।
है आत्म की कलुषता विधि वन्ध हेतू,
संसार हेतु विधि वन्धन जान रे! तू ।।५९५।।

जो राग से सहित है वसु कर्म पाता,
होता विराग भव मुक्त-अनन्त ज्ञाता।
संसारि-जीव भर की विधि वन्ध गाथा,
संक्षेप में समझ, क्यों रति गीत गाता ।।५९६।।

मोक्षाभिलाष यदि है तज राग रागी,
नीराग भाव गहलें, वन वीतरागी।
ऐसा हि भव्य जन शाश्वत सौख्य पाते,
शीघ्रातिशीघ्र भव-वारिधि तैर जाते ।।५९७।।

है पाप-पुण्य विधि दो विधि बंध हेतु-
रे जान निश्चित शुभाशुभ भाव को तू।
है धारते अशुभ तीव्र कषाय वाले,
शोभे सुधार 'शुभ' मन्द कषायवाले ।।५९८।।

धारें क्षमा खलजनों कटुभाषियों में,
लेवें नितान्त गुण शोध सभीजनों में।
बोलें सदैव पिय बोल, उन्हीं जनों के,
ये हैं उदाहरण मंद कषायियों के ।।५९९।।

जी वैरभाव रखना चिर, साधुओं में,
प्रादोष को निरखना, गुण धारियों में।
शंसा स्वकीय करना, उन पापियों के,
ये चिन्ह हैं परम तीव्र कषायियों के ।।६००।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६०१. रागद्दोसपमत्तो, इंदियवसओ करेइ कम्माइं ।
आसवदारेहिं अवि-गुहेहिं तिविहेण अरणेणं ।।१४।।

६०२. आसवदारेहिं सया, हिंसाईएहिं कम्ममासवइ ।
जह नावाइ विणासो, छिद्देहि जलं उयहिमज्झे ।।१५।।

६०३. मणसा वाया कायेण, का वि जुत्तस्स विरियपरिणामो ।
जीवस्स-प्पणिओगो, जोगो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठो ।।१६।।

६०४. जहा जहा अप्पतरो से जोगो, तहा तहा अप्पतरो से बंधो ।
निरुद्धजोगिस्स व से ण होति, अछिद्दपोतस्स व अंबुणाथे ।।१७।।

६०५. मिच्छिन्ताविरदी वि य, कसाय जोगा य आसवा होंति ।
संजम-विराय-दंसण-जोगाभावो य संवरओ ।।१८।।

६०६. रुंधियछिद्दसहस्से, जलजाणे जह जलं तु णासवदि ।
मिच्छत्ताइअभावे, तह जीवे संवरो होई ।।१९।।

६०७. सव्वभूयऽप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधई ।।२०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो राग रोध वश मत्त बना भिखारी,
आधीन इन्द्रिय निकायन का विकारी।
है अष्ट कर्म करता त्रय योग द्वारा,
कैसे खुले ? फिर उसे वर मुक्ति द्वारा ।।६०१।

हिंसादि पंचविध आस्रवद्वार द्वारा,
होता सदैव विधि आस्रव है अपारा।
आत्मा भवाम्बुनिधि में तब डूब जाती,
नौका सछिद्र, जल में कब तैर पाती ? ।।६०२।।

हो वात से सरसि शीघ्र तरंगिता ज्यों,
वाक्काय से मनस से यह आतमा त्यों।
त्रैलोक्य पूज्य जिन 'योग' उसे बताते,
वे योग निग्रहतया जग जान जाते ।।६०३।।

ज्यों-ज्यों त्रियोग रुकते-रुकते चलेंगे।
त्यों-त्यों नितान्त विधि आस्रव भी रुकेंगे।
सम्पूर्ण योग रुक जाय न कर्म आता,
क्या पोत में विवर के बिन नीर जाता ?।।६०४।।

मिथ्यात्व औ अविरती कुकषाय योग,
ये चार आस्रव इन्हीं वश दुःखयोग।
सम्यक्त्व संयम, विराग त्रियोगरोध,
ये चार संवर, जगे इनसे स्वबोध ।।६०५।।

हो बन्द, पोतगत छेद सभी सही है!!
पानी प्रवेश करता उसमें नहीं है।
मिथ्यात्व आदि मिटने पर शीघ्रता से,
हो कर्म संवर निजातम साम्यता से ।।६०६।।

रोके नितान्त जिनने विधि द्वार सारे,
होते जिन्हें निज समा जग जीव प्यारे।
वे संयमी परम संवर को निभाते,
है पाप रूप विधि-बन्धन को न पाते ।।६०७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६०८. मिच्छत्तासवदारं, रुंभइ सम्मत्तदिढकवाडेण ।
हिंसादिदुवाराणि वि, दिढवयफलिहेहिं रुंभंति ॥२१॥

६०९. जहा महातलायस्स, सन्निरुद्धे जलागमे ।
उस्सिचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे ॥२२॥

६१०. एवं तु संजयस्सावि, पावकम्मनिरासवे ।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ ॥२३॥

६११. तवसा चेव ण मोक्खो, संवरहीणस्स होइ जिणवयणे ।
ण हु सोत्ते पविसंते, किसिणं परिसुस्सदि तलायं ॥२४॥

६१२. ज अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुआहिं वासकोडीहिं ।
तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥२५॥

६१३. सेणावइम्मि णिहए, जहा सेणा पणस्सई ।
एवं कम्माणि णस्संति, मोहणिज्जे खयं गए ॥२६॥

६१४. कम्ममलविप्पमुक्को, उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता ।
सो सव्वणाणदरिसी, लहदि सुहमणिंदियमणंतं ॥२७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व रूप विधि-द्वार खुले न भाई,
तू शीघ्र से दृग कपाट लगा भलाई।
हिंसादि द्वार, व्रतरूप कपाट द्वारा,
हे! भव्य वन्द कर दें, सुख पा अपारा ।।६०८।।

होगा जलास्रव जहाँ तुम बांध डालो,
आये हुए सलिल वाद निकाल डालो।
तालाव में जल लवालव हो भले ही,
ओ सूखता सहज से पल में टले ही ।।६०९।।

हो संयमी परम आतम शोधता है,
संपूर्ण पाप विधि-आस्रव रोकता है।
निर्भ्रान्त कोटिभव संचित कर्म सारे,
होते विनष्ट, तपसे क्षण में बिचारे ।।६१०।।

पाये विना परम संवर को तपस्वी,
पाता न मोक्ष तप से, कहते मनस्वी।
आता रहा सलिल वाहर से सदा ओ,
क्या सूखता सर कभी ? तुम ही वताओ ।।६११।।

है कर्म नष्ट करता जितना वनों में—
जा अज्ञ धार तप, कोटि भवों भवों में।
ज्ञानी निमेष भर में त्रय गुप्ति द्वारा,
है कर्म नष्ट करता उतना सुचारा ।।६१२।।

होता विनष्ट जव मोह अशान्तिदाई,
तो शेष कर्म सहसा नश जाय भाई!
सेनाधिनायक भला रण में मरा हो,
सेना कभी वच सके ? न वचे जरा ओ ।।६१३।।

लोकान्त लौं गमन है करता सुहाता-
है सिद्ध कर्ममलमुक्त, निजात्म धाता।
सर्वज्ञ हो लस रहा नित सर्वदर्शी,
होता अतीन्द्रिय अनन्त प्रमाद स्पर्शी ।।६१४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६१५. चक्किकुरुफणिसुरेंदेसु अहमिंदे जं सुहं तिकालभवं ।
तत्तो अणंतगुणिदं, सिद्धाणं खणसुहं होदि ।।२८।।

६१६. सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का जत्थ न विज्जइ ।
मई तत्थ न गाहिया, ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने ।।२९।।

६१७. ण वि दुक्खं ण वि सुक्खं, ण वि पीडा णेव विज्जदे बाहा ।
ण वि मरणं ण वि जणणं, तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।।३०।।

६१८. ण वि इंदिय उवसग्गा, ण वि मोहो विम्हयो ण णिद्दा य ।
ण य तिण्हा णेव छुहा, तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।।३१।।

६१९. ण वि कम्मं णोकम्मं, ण वि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि ।
ण वि धम्मसुक्कझाणे, तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।।२३।।

६२०. विज्जदि केवलणाणं, केवलसोक्खं च केवलं विरयं ।
केवलदिट्ठि अमुत्तं, अत्थित्तं सप्पदेसत्तं ।।३३।।

६२१. निव्वाणं ति अवाहंति, सिद्धी लोगग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, ज चरंति महेसिणो ।।३४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संप्राप्त जो सुख, सुरों असुरों नरों को,
औ भोग भूमिजजनों अहमिंद्रकों को।
ओ मात्र विन्दु, जव सिद्धनका सुसिंधु,
खद्योत-ज्योति इक है इक पूर्ण इन्दु।।६१५।।

संकल्प तर्क न जहाँ मन ही मरा है,
ना ओज तेज, मलकी न परम्परा है।
संमोह का क्षय हुआ फिर खेद कैसे ?
ना शब्द गम्य वह मोक्ष, दिखाय कैसे ? ।।६१६।।

वाधा न जीवित जहाँ कुछ भी न पीड़ा,
आती न गन्ध सुख की दुख से न क्रीड़ा।
ना जन्म है मरण है जिसमें दिखाते,
'निर्वाण' जान वह है गुरु यों वताते।।६१७।।

निद्रा न मोहतम विस्मय भी नहीं है,
ये इन्द्रियाँ जड़मयी जिसमें नहीं है।
वाधा कभी न उपसर्ग तृषा क्षुधा है,
निर्वाण में सुखद बोधमयी सुधा है।।६१८।।

चिन्ता नहीं उपजती चित में जरा-सी,
नोकर्म भी नहिं, नहिं वसु कर्म-राशि।
होते जहाँ नहि शुभाशुभ ध्यान चारी,
निर्वाण है वह रहा तुम यों विचारी।।६१९।।

कैवल्य-बोध - सुख - दर्शन - वीर्य वाला,
आत्मा प्रदेशमय मात्र अमूर्त शाला।
निर्वाण में निवसता निज नीति धारी,
अस्तित्व से विलसता जग-आर्तहारी।।६२०।।

पाते महर्षि ऋषि सन्त जिसे, वही है,
निर्वाण, सिद्धि, शिव, मोक्ष-मही सही है।
लोकाग्र है सुख अवाधक, क्षेम प्यारा,
वन्दूं उसे विनय से वस वार वारा।।६२१।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६२२. लाउअ एरण्डफले, अग्गीधूमे उसू धणुविमुक्के ।
गइ पुव्वपओगेणं, एवं सिद्धाण वि गती तु ।।३५।।

६२३. अव्वाबाहमणिंदिय-मणोवमं पुण्णपावणिम्मुक्कं ।
पुणरागमणविरहियं, णिच्चं अचलं अणालंबं ।।३६।।

## ३५. द्रव्य सूत्र

६२४. धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जन्तवो ।
एस लोगो त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ।।१।।

६२५. आगासकालपुग्गल-धम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा ।
तेंसि अचेदणत्तं, भणिदं जीवस्स चेदणदा ।।२।।

६२६. आगासकालजीवा, धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।
मुत्तं पुग्गलदव्वं, जीवो खलु चेदणो तेसु ।।३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एरण्डबीज सहसा जब सूख जाता,
है अर्ध्व ही नियम से उड़ता दिखता।
हो पंक लिप्त जल में वह डूब जाती,
तुम्बी सपंक तजती द्रुत ऊर्ध्व आती।

छूटा हुआ धनुष से जिस भाँति वाण,
हो पूर्व योग वश हो गतिमान मान।
श्री सिद्ध जीवगति भी उस भाँति होती,
धूमाग्नि की गति समा वह ऊर्ध्व होती ।।६२२।।

आकाश से निरवलम्ब अवाध प्यारे,
वे सिद्ध हैं अचल, नित्य, अनूप सारे।
होते अतीन्द्रिय पुनः भव में न आते,
है पुण्य - पाप - विधि-हीन मुझे सुहाते ।।६२३।।

## ३५. द्रव्य सूत्र

ये जीव, पुद्गल, ख, धर्म, अधर्म, काल,
होते जहाँ समझ 'लोक' उसे विशाल।
आलोक से सकल-लोक अलोक देखा,
यों 'वीर ने' सदुपदेश दिया सुरेखा ।।६२४।।

आकाश, पुद्गल अधर्म व धर्म, काल,
चैतन्य से विकल है सुन भव्य वाल।
होते अतः सव अजीव सदीव भाई,
लो! जीव में उजल चेतनता सुहाई ।।६२५।।

ये पाँच द्रव्य, नभ धर्म अधर्म, काल,
औ जीव शाश्वत अमूर्तिक है निहाल!
है मूर्त पुद्गल सदा सवमें निराला,
है जीव चेतन-निकेतन, बोधशाला ।।६२६।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६२७. जीवा पुग्गलकाया, सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा ।
पुग्गलकरणा जीवा, खंधा खलु कालकरणा दु ॥४॥

६२८. धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ॥५॥

६२९. धम्माधम्मे य दोऽवेए, लोगमित्ता वियाहिया ।
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए ॥६॥

६३०. अन्नोन्नं पविसंता, दिंता ओगासमन्नमन्नस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं, सगं सभावं ण विजहंति ॥७॥

६३१. धम्मत्थिकायमरसं, अवण्णगंधं असद्दमप्फासं ।
लोगोगाढं पुट्ठं, पिहुलमसंखादिय-पदेसं ॥८॥

६३२. उदयं जह मच्छाणं, गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए ।
तह जीवपुग्गलाणं, धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥९॥

६३३. ण य गच्छदि धम्मत्थी, गमणं ण करेदि अन्नदवियस्स ।
हवदि गती स प्पसरो, जीवाणं पुग्गलाणं च ॥१०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये जीव पुद्गल जु सक्रिय द्रव्य दो है,
तो शेष चार सब निष्क्रिय द्रव्य जो है।
कर्माभिभूत जड़ पुद्गल से क्रियावान्,
है जीव, कालवश पुद्गल है क्रियावान् ।।६२७।।

है एक एक नभ, धर्म, अधर्म तीनों,
तो शेष शाश्वत अनन्त अनन्त तीनों।
हैं वस्तुतः सब स्वतन्त्र स्वलीन होते,
ऐसा जिनेश कहते वसु कर्म खोते ।।६२८।।

है धर्म औ वह अधर्म त्रिलोक व्यापी,
आकाश तो सकल लोक अलोक व्यापी।
है मर्त्य लोक भर में व्यवहार काल,
सर्वज्ञ के वचन हैं सुन भव्य बाल! ।।६२९।।

देते हुए श्रेय परस्पर में मिले हैं,
ये सर्व द्रव्य पय शक्कर से घुले हैं।
शोभे तथापि अपने अपने गुणों से,
छोड़े नहीं निज स्वभाव युगों-युगों से ।।६३०।।

है स्पर्श रूप, रस, गन्ध, विहीन स्थाई,
है खण्ड-खण्ड नहिं पूर्ण अखण्ड भाई।
है लोक पूर्ण सुविशाल असंख्य देशी,
धर्मास्तिकाय वह है सुन तू हितैषी ।।६३१।।

त्यों धर्म, जीव जड़ की गति में सहाई,
ज्यों मीन के गमन में जल होय भाई!
औदास्य भाव धरता नहि प्रेरणा है,
धर्मास्तिकाय यह है जिन देशना है ।।६३२।।

धर्मास्तिकाय खुद ना चलता चलाता,
पै प्राणि पुद्गल चलें, गति है दिलाता।
होता न प्रेरक निमित्त तथापि भाई,
ज्यों रेल के गमन में पटरी सहाई ।।६३३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६३४. जह हवदि धम्मदव्वं, तह तं जाणेह दव्वमधम्मक्खं ।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं, कारणभूदं तु पुढवीव ॥११॥

६३५. चेयणरहियममुत्तं, अवगाहणलक्खणं च सव्वगयं ।
लोयालोयविभेयं, तं णहदव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥१२॥

६३६. जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए ।
अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए ॥१३॥

६३७. पासरसगंधवण्ण-व्वदिरित्तो अगुरुलहुगसंजुत्तो ।
वत्तणलक्खणकलियं, कालसरूवं इमं होदि ॥१४॥

६३८. जीवाण पुग्गलाणं, हुवंति परियट्टणाइ विविहाइ ।
एदाणं पज्जाया, वट्टंते मुक्खकालआधारे ॥१५॥

६३९. समयावलिउस्सासा, पाणा थोवा य आदिआ भेदा ।
ववहारकालणामा, णिद्दिट्ठा वीयराएहिं ॥१६॥

६४०. अणुखंधवियप्पेण दु, पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं ।
खंधा हु छप्पयारा, परमाणू चेव दुवियप्पो ॥१७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है धर्म द्रव्य उस भाँति अधर्म द्रव्य,
कोई क्रिया न करता सुन भद्र ! भव्य !
औदास्य भाव धरतीसम धार लेता,
ज्यों प्राणि पुद्गल रुकें स्थितिदान देता ।।६३४।।

आकाश व्यापक अचेतन भावधाता,
होता पदार्थ दल का अवगाह दाता।
भाई अमूर्त नभ के फिर भेद दो हैं,
है एक लोक, इक दीर्घ अलोक सो है ।।६३५।।

जीवादि द्रव्य छह ये मिलते जहाँ है,
माना गया अमित लोक यही यहाँ है।
आकाश केवल अलोक वही कहाता,
यों ठीक-ठीक यह छन्द हमें बताता ।।६३६।।

है स्पर्श रूप रस गन्ध विहीन होता,
संवर्तनामय सुलक्षण जो कि ढोता।
है धारता गुण सदा अगुरुलघु को,
है काल स्वीकृत यही जग के प्रभु को ।।६३७।।

है हो रहा नित अचेतन पुद्गलों में,
धारा प्रवाह परिवर्तन चेतनों में।
ओ काल का बस अनुग्रह तो रहा है,
वैराग्य का परम कारण हो रहा है ।।६३८।।

घंटा निमेष समयावलि आदि देखो।
होते प्रभेद जिसमें सहसा अनेकों।
होता वही समय में व्यवहार काल,
है वीतराग जिनका मत है निहाल ।।६३९।।

दो भेद, 'स्कन्ध', 'अणु' पुद्गल के पिछानो,
है स्कन्ध भेद छह को अणु के सुजानो।
है कार्य रूप अणु कारण रूप दूजा,
पै चर्मचक्षु अणु की करती न पूजा ।।६४०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६४१. अइथूलथूल थूलं, थूलसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं अइसुहुमं इदि, धरादियं होदि छब्भेयं ।।१८।।

६४२. पुढवी जलं च छाया, चउरिंदियविसय-कम्मपरमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं, पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं ।।१९।।

६४३. अंतादिमज्झहीणं, अपदेसं इंदिएहिं ण हु गेज्झं ।
जं दव्वं अविभत्तं, त परमाणुं कहंति जिणा ।।२०।।

६४४. वण्णरसगंधफासे, पूरणगलणाइ सव्वकालम्हि ।
खंदं इव कुणमाणा, परमाणू पुग्गला तम्हा ।।२१।।

६४५. पाणेहिं चदुहिं जीवदि, जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो, पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ।।२२।।

६४६. अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा, णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ।।२३।।

६४७. जह पउमरायरयणं, खित्तं खीरे पभासयदि खीरं ।
तह देही देहत्थो, सदेहमत्तं पभासयदि ।।२४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है स्थूल-स्थूल, फिर स्थूल व स्थूल सूक्ष्म,
औ सूक्ष्म स्थूल पुनि सूक्ष्म सु सूक्ष्म सूक्ष्म।
भू, नीर, आतप, हवा, विधि-वर्गणायें,
ये हैं उदाहरण स्कन्धन के गिनाये ॥६४१॥

किंवा धरा सलिल, लोचन गम्य छाया,
नासादि के विषय पुद्गल कर्म माया।
अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु, छहो यहाँ ये,
हैं स्कन्ध भेद जड़ पुद्गल के वताये ॥६४२॥

जो द्रव्य होकर न इन्द्रिय गम्य होता,
है आदि मध्य अरु अन्त विहीन होता।
है एक देश रखता अविभाज्य भाता,
ऐसा कहें जिन यही परमाणु गाथा ॥६४३॥

जो स्कन्ध में वह क्रिया अणु में इसी से,
तू जान पुद्गल सदा अणु को खुशी से।
स्पर्शादि चार गुण पुद्गल धार पाता,
है पूरता पिघलता पर स्पष्ट भाता ॥६४४॥

ओ जीव है, विगत में चिर जी चुका है,
जो चार प्राण धर के अब जी रहा है।
आगे इसी तरह जीवन जी सकेगा,
उच्छ्वास-आयु-बल इन्द्रिय पा लसेगा ॥६४५॥

विस्तार संकुचन शक्तितया शरीरी,
छोटा बड़ा तन प्रमाण दिखे विकारी।
पै छोड़के समुद्घात दशा हितैषी!
है वस्तुतः सकल जीव असंख्य देशी ॥६४६॥

ज्यों दूध में पतित माणिक दूध को ही,
है लाल लाल करता सुन मूढ़ मोही!
त्यों जीव देह थित हो निज देह को ही,
सम्यक् प्रकाशित करे नहिं अन्य को ही ॥६४७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६४८. आदा णाणपमाणं, णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं ।
णेयं लोयालोयं, तम्हा णाणं तु सव्वगयं ।।२५।।

६४९. जीवा संसारत्था, णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा ।
उवओगलक्खणा वि य, देहादेहप्पवीचारा ।।२६।।

६५०. पुढविजलतेयवाऊ-वणप्फदी विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ।।२७।।

## ३६. सृष्टि सूत्र

६५१. लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो ।
जीवाजीवेहिं फुडो, सव्वागासावयवो णिच्चो ।।१।।

६५२. अपदसो परमाणू, पदसमेत्तो य समयसद्दो जो ।
णिद्धो वा लुक्खो वा, दुपदेसादित्तमणुहवदि ।।२।।

६५३. दुपदेसादी खंधा, सुहुमा वा बादरा ससंठाणा ।
पुढविजलतेउवाऊ, सगपरिणामेहिं जायंते ।।३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा तथापि वह ज्ञान प्रमाण भाता,
है ज्ञान भी सकल ज्ञेय प्रमाण साता।
है ज्ञेय तो अमित लोक अलोक सारा,
भाई अतः निखिल व्यापक ज्ञान प्यारा ।।६४८।।

ये जीव है द्विविध, चेतन धाम सारे,
'संसारि' 'मुक्त' द्विविधा उपयोग धारे।
संसारिजीव तनधारक है दुखी है,
है मुक्त जीव तनमुक्त तभी सुखी है ।।६४९।।

पृथ्वी-जलानल समीर तथा लतायें,
एकेंद्रिजीव सब स्थावर ये कहायें।
है धारते करण दो, त्रय, चार, पाँच,
शंखादि जीव त्रस है करते प्रपंच ।।६५०।।

## ३६. सृष्टि सूत्र

है वस्तुतः यह अकृत्रिम लोक भाता,
आकाश का हि इक भाग अहो! कहाता।
आई अनादि अविनश्वर नित्य भी है,
जीवादि द्रव्य दल पूरित पूर्ण भी है ।।६५१।।

पा योग अन्य अणु का अणु स्कन्ध होता,
है स्निग्ध रुक्ष गुण धारक चूँकि होता।
ना शब्द रूप अणु है, इक देश धारी,
प्रत्यक्ष ज्ञान लखता 'अणु' निर्विकारी ।।६५२।।

ये सूक्ष्म स्थूल द्वयणुकादिक स्कन्ध सारे,
पृथ्वी जलाग्नि मरुतादिक रूप धारें।
कोई इन्हें न ऋषि ईश्वर ही बनाते,
पै स्वीय शक्ति वश ही बनते सुहाते ।।६५३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६५४. ओगाढगाढणिचिदो, पुग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो ।
सुहुमेहि बादरेहि य, अप्पाओग्गेहिं जोग्गेहिं ॥४॥

६५५. कम्मत्तणपाओग्गा, खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा ।
गच्छंति कम्मभावं, ण हि ते जीवेण परिणमिदा ॥५॥

६५६. भावेण जेण जीवो, पेच्छदि जाणादि आगदं विसये ।
रज्जदि तेणेव पुणो, बज्झदि कम्म त्ति उवदेसो ॥६॥

६५७. सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं ।
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं ॥७॥

६५८. तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छई उ परं भवं ॥८॥

६५९. ते ते कम्मत्तगदा, पोग्गलकाया पुणो वि जीवस्स ।
संजायंते देहा, देहंतरसंकमं पप्पा ॥९॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्मादि स्कन्ध दल से त्रय लोक सारा,
पूरा ठसाठस भरा प्रभु ने निहारा।
है योग्य स्कन्ध उनमें विधि रूप पाने,
होते अयोग्य कुछ हैं समझो सयाने ! ।।६५४।।

ज्यों जीव के विकृत भाव निमित्त पाती,
वे वर्गणा विधिमयी विधि हो सताती।
आत्मा उन्हें न विधिरूप हठात् बनाता।
होता स्वभाव वश कार्य सदा दिखाता ।।६५५।।

रागादि से निरखता यदि जानता है,
पंचेंद्रि के विषय को मन धारता है।
रंजायमान उसमें वह ही फँसेगा,
दुष्टाष्ट कर्म-मल में चिर ओ लसेगा ।।६५६।।

सर्वत्र है विपुल है विधि वर्गणायें,
आकीर्ण पूर्ण जिनसे कि दशों दिशायें।
वे जीव के सब प्रदेशन में समाते,
रागादिभाव जब जीव सुधार पाते ।।६५७।।

ज्यों राग-रोष मय भाव स्वचित्त लाता,
है मूढ़ पामर शुभाशुभ कर्म पाता।
होता तभी वह भवान्तर को रवाना,
ले साथ ही नियम से विधि के खजाना ।।६५८।।

प्राचीन कर्म वश देह नवीन पाते,
संसारिजीव पुनि कर्म नये कमाते।
यों बार-बार कर कर्म दुखी हुए हैं,
वे कर्म-बन्ध तज सिद्ध सुखी हुए हैं ।।६५९।।

## दोहा

"तत्त्वदर्शन" यही रहा निजदर्शन का हेतु।
जिन दर्शन का सार है, भवसागर के सेतु ।।

( तृतीय खण्ड समाप्त )



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# लोक-दर्शन

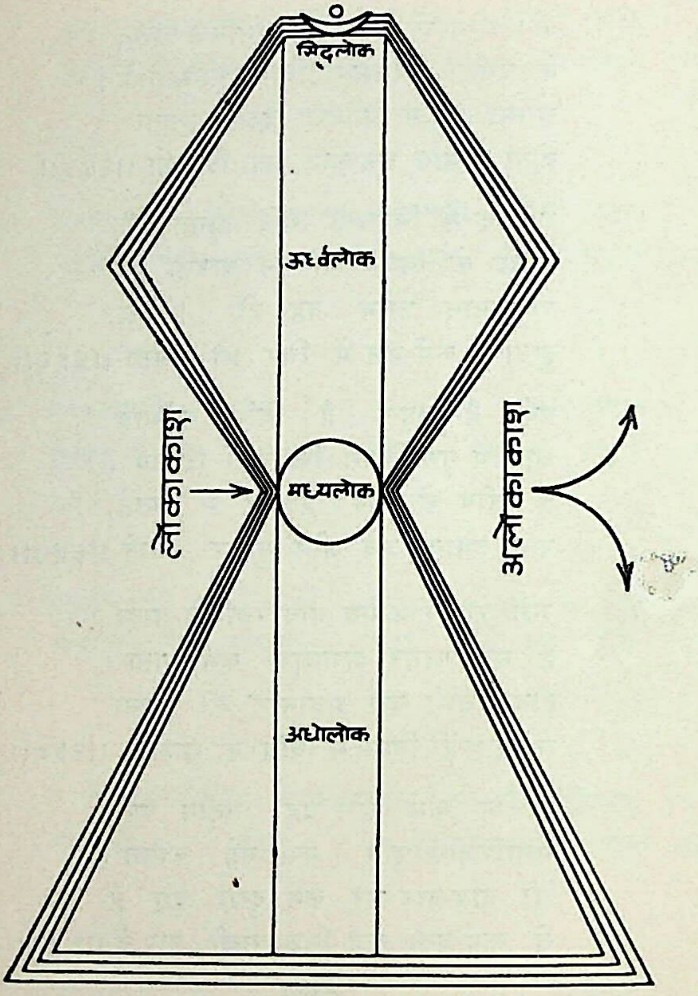


चौदह राजु उत्तंग नभ लोक पुरुषसंठान ।
तामैं जीव अनादितैं भरमत हैं बिन ज्ञान ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चतुर्थ खण्ड

# स्याद्वाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ३७. अनेकान्त सूत्र

६६०. जेण विणा लोगस्स वि, ववहारो सव्वहा न निव्वहइ ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स ॥१॥

६६१. गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥२॥

६६२. दव्वं पज्जवविउयं, दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि ।
उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा, हंदि दवियलक्खणं एयं ॥३॥

६६३. ण भवो भंगविहीणो, भंगो वा णत्थि संभवविहीणो ।
उप्पादो वि य भंगो, ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥४॥

६६४. उप्पादट्ठिदिभंगा, विज्जंते पज्जएसु पज्जाया ।
दव्वं हि संति नियदं, तम्हा दव्वं हवदि सव्वं ॥५॥

६६५. समवेदं खलु दव्वं, संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं ।
एक्कम्मि चेव समये, तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं ॥६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ३७. अनेकान्त सूत्र

जो विश्व के विविध कार्य हमें दिखाते,
भाई, विना जिसके चल वे न पाते।
नैकान्तवाद वह है जगदेक स्वामी!
वन्दू उसे विनय से शिव पन्थगामी ।।६६०।।

आधार द्रव्य, गुणका, इक द्रव्य का ही,
आधार ले गुण लसे, शिव राह राही!
पर्याय द्रव्य गुण आश्रित हैं कहाते,
ये वीर के वचन ना जड़ को सुहाते ।।६६१।।

पर्याय के विन कहीं नहिं द्रव्य पाता,
तो द्रव्य के विन न पर्यय भी सुहाता।
उत्पाद-ध्रौव्य-व्यय लक्षण द्रव्य का है,
यों जान, लाभ द्रुत लूँ निज द्रव्य का है ।।६६२।।

उत्पाद भी न व्यय के विन दीख पाता,
उत्पाद के विन कहीं व्यय भी न भाता।
उत्पाद और व्यय ना विन ध्रौव्य के हो,
विश्वास ईदृशन किन्तु अभव्य के हो ।।६६३।।

उत्पाद ध्रौव्य व्यय हो इन पर्ययों में,
हो द्रव्य में नहिं तथा उसके गुणों में।
पर्याय है नियत द्रव्यमयी, तभी है,
वे 'द्रव्य' ही कह रहे गुरु यों सभी है ।।६६४।।

है एक ही समय में त्रय भाव ढोता,
उत्पाद ध्रौव्य व्यय धारक द्रव्य होता।
तीनों अतः नियत द्रव्य यथार्थ में हैं,
योगी कहें रत स्वकीय पदार्थ में हैं ।।६६५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६६६. पाडुब्भवदि य अन्नो, पज्जाओ पज्जाओ वयदि अन्नो ।
दव्वस्स तं पि दव्वं, णेव पणट्ठं णेव उप्पन्नं ॥७॥

६६७. पुरिसम्मि पुरिससद्दो, जम्माई-मरणकालपज्जन्तो ।
तस्स उ बालाईया, पज्जवजोया बहुवियप्पा ॥८॥

६६८. तम्हा वत्थूणं चिय, जो सरिसो पज्जवो स सामन्नं ।
जो विसरिसो विसेसो, य मओऽणत्थंतरं तत्तो ॥९॥

६६९. सामन्न अह विसेसे, दव्वे णाणं हवेइ अविरोहो ।
साहइ तं सम्मत्तं, णहु पुण तं तस्स विवरीयं ॥१०॥

६७०. पिउ-पुत्त-णत्तु-भव्वय-भाऊणं एगपुरिससंबंधो ।
ण य सो एगस्स पिय, त्ति सेसयाणं पिया होइ ॥११॥

६७१. सवियप्प-णिवियप्पं इय, पुरिसं जो भणेज्ज अवियप्पं ।
सवियप्पमेव वा णिच्छएण, ण स निच्छमो समए ॥१२॥

६७२. अन्नोन्नाणुगयाणं, 'इमं व तं व' त्ति विभयणमजुत्तं ।
जह 'दुद्ध-पाणियाणं, जावंत विसेसपज्जाया ॥१३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याय एक नशती जब लौं जहाँ है,
तो दूसरी उपजती तव लौं वहाँ है।
पै द्रव्य है ध्रुव त्रिकाल अवाध भाता,
ना जन्मता न मिटता यह शास्त्र गाता ।।६६६।।

पौरुष्य तो पुरुष में इकसार पाता,
ले जन्म से मरण लौं नहिं छोड़ जाता।
वार्धक्य ओ शिशु किशोर युवा दशायें,
पर्याय हैं जनमती मिटती सदा यें ।।६६७।।

पर्याय जो सदृश्य द्रव्यन की सुहाती,
'सामान्य' नाम वह निश्चित धार पाती।
पर्याय हो विसदृशा वह हो 'विशेषा'
ये द्रव्य को तज नहीं रहती निमेषा ।।६६८।।

सामान्य और सविशेष द्विधर्म वाला,
हो द्रव्य ज्ञान जिसको लखता सुचारा।
सम्यक्त्व का वह सुसाधक बोध होता,
मिथ्यात्व मित्र, आर्य मित्र ! कुबोध होता ।।६६९।।

हो एक ही पुरुष भानज तात भाई,
देता वही सुत किसी नय से दिखाई।
पै भ्रात तात सुत ओ सबका न होता,
है वस्तु धर्म इस भाँति अशांति खोता ।।६७०।।

जो निर्विकल्प - सविकल्प द्विधर्म वाला,
है शोभता नर मनो शशि हो उजाला।
एकान्त से यदि उसे इकधर्मधारी,
जो मानता वह न आगम बोध धारी ।।६७१।।

पर्याय नैक विध यद्यपि हो तथापि,
भाई विभाजित उन्हें न करो कदापि।
वे क्षीर नीर जब आपस में मिलेंगे,
ओ 'नीर' 'क्षीर' 'यह' यों फिर क्या कहेंगे ?।।६७२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६७३. संकेज्ज याऽसंकितभाव भिक्खू, विभज्जवायं च वियागरेज्जा ।
भासादुगं धम्मसमुट्ठितेहिं, वियागरेज्जा समया सुपन्ने ।।१४।।

## ३८. प्रमाण सूत्र

### (अ) पंचविध ज्ञान

६७४. संसयविमोह-विब्भय-विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स :
गहणं सम्मं णाणं, सायारमणेयभेयं तु ।।१

६७५. तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं ।
ओहिनाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं ।।२।।

६७६. पंचेव होंति णाणा, मदिसुदओहीमणं च केवलयं ।
खयउवसमिया चउरो, केवलणाणं हवे खइयं ।।३।।

६७७. ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।
सण्णा सती मती पण्णा, सव्वं आभिणिबोधियं ।।४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निःशंक हो समय म तज मान सारा,
स्याद्वाद का विनय से मुनि लें सहारा।
भाषा द्विधाअनुभय सत्य सदैव वोले,
निष्पक्ष भाव धर शास्त्र रहस्य खोले ॥६७३॥

## ३८. प्रमाण सूत्र

### (अ) पंचविध ज्ञान

संमोह – संभ्रम – ससंशय – हीन प्यारा,
कल्यान खान वह ज्ञान प्रमाण प्याला।
माना गया स्वपरभाव प्रभाव दर्शी,
साकार नैकनिध शाश्वत–सौख्य–स्पर्शी ॥६७४॥

सज्ज्ञान पंच विध ही मतिज्ञान प्यारा–
दूजा श्रुतावधि–तृतीय सुधा - सुधारा।
चौथा पुनीत मनपर्यय ज्ञान मानूँ,
है पाँचवा परमकेवल ज्ञान - भानू ॥६७५॥

सज्ज्ञान पंच विध ही गुरु गा रहे हैं,
लेके सहार जिसका शिव जा रहे हैं।
सम्पूर्ण आयिक सुकेवल ज्ञान नामी,
चारों क्षयोपशमका अवशेष स्वामी ॥६७६॥

ईहा, अपोह, मति, शक्ति, तथैव संज्ञा,
मीसांस, मार्गण, गवेषण और प्रज्ञा।
ये सर्व ही अभिनिवोधिक ज्ञान भाई,
पूजो इसे वस यही शिव–सौख्य दाई ॥६७७॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६७८. अत्थाओ अत्थंतर-मुवलंभे तं भणंति सुयणाणं ।
आभिणिबोहियपुव्वं, णियमेण य सद्दयं मूलं ॥५॥

६७९. इंदियमणोनिमित्तं, जं विण्णाणं सुयाणुसारेणं ।
निययतत्थुत्तिसमत्थं, तं भावसुयं मई सेसं ॥६॥

६८०. मइपुव्वं सुयमुत्तं, न मई सुयपुव्विया विसेसोऽयं ।
पुव्वं पूरणपालण-भावाओ जं मई तस्स ॥७॥

६८१. अवहीयदित्ति ओही, सीमाणाणेत्ति वण्णियं समए ।
भवगुणपच्चय-विहियं, तमोहिणाण त्ति णं बिंति ॥८॥

६८२. चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतिय अणेयभेयगयं ।
मणपज्जव त्ति णाणं, जं जाणइ तं तु णरलोए ॥९॥

६८३. केवलमेगं सुद्धं, सगलमसाहारणं अणंतं च ।
पायं च नाणसद्दो, नामसमाणाहिगरणोऽयं ॥१०॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधार ले विषय का मति के जनाता—
जो अन्य द्रव्य, श्रुत ज्ञान वही कहाता।
ओ लिंगशब्दज तथा श्रुत ही द्विधा है,
होता नितान्त मतिपूर्वक ही सुधा है।
है मुख्य शब्दज जिनागम में कहाता,
जो भी उसे उर-धरे भवपार जाता ।।६७८।।

पाके निमित्त मन इन्द्रिय का अधारी,
होता प्रसूत श्रुतज्ञान श्रुतानुसारी।
है आत्मतत्त्व परसन्मुख थापने में,
स्वामी! समर्थ श्रुत ही, मति जानने में ।।६७९।।

हो पूर्व में मति सदा श्रुत वाद में हो,
ना पूर्व में श्रुत कभी मति वाद में हो।
होती 'पृ' धातु परिपूरण पालने में,
हो पूर्व में मति अतः श्रुत पूरणे में ।।६८०।।

सीमा बना, समय आदिक की सयाने,
रूपी पदार्थ-भर को इकदेश जाने।
जो ख्यात भाव* गुण प्रत्यय से ससीमा,
माना गया अवधिज्ञान वही सुधीमा ।।६८१।।

है चित्त चिंतित अचिंतित चिंतता है,
या सार्ध चिंतित नृलोकन में यहाँ है।
जो जानता वस उसे शिव सौख्य दाता,
प्रत्यक्ष ज्ञान मन पर्यय नाम पाता ।।६८२।।

शुद्धैक और सब, अनन्त विशेष आदि,
ये अर्थ हैं सकल केवल के अनादि।
कैवल्य ज्ञान इन सर्व विशेषणों से,
शोभे अतः भज उसे, वच दुर्गुणों से ।।६८३।।

---

* भव शब्द को ही भाव शब्द बनाकर छन्द को निर्दोष बनाने का प्रयास किया है। अवधि ज्ञान "भव प्रत्यक्ष" और "गुण प्रत्यक्ष" दो प्रकार का होता है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६८४. संभिन्नं पासंतो, लोगमलोगं च सव्वओ सव्वं।
तं नत्थि जं न पासइ, भूयं भव्वं भविस्सं च ॥११॥

(आ) प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण

६८५. गेह्णइ वत्थुसहावं, अविरुद्धं सम्मरूवं जं णाणं।
भणियं खु तं पमाणं, पच्चक्खपरोक्खभेएहिं ॥१२॥

६८६. जीवो अक्खो अत्थव्ववण - भोयणगुणन्निओ जेणं।
तं पइ वट्टइ नाणं, जे पच्चक्खं तयं तिविहं ॥१३॥

६८७. अक्खस्स पोग्गलकया, जं दव्विन्दियमणा परा तेणं।
तेहिं तो जं नाणं, परोक्खमिह तमणुमाणं व ॥१४॥

६८८. होंति परोक्खाइं मइ-सुयाइं जीवस्स परनिमित्ताओ।
पुव्वोवलद्धसंबंध-सरणाओ वाणुमाणं व ॥१५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो एक साथ सहसा विन रोक-टोक,
है जानता सकल लोक तथा अलोक।
'कैवल्य-ज्ञान' जिसको नहिं जानता हो,
ऐसा गतागत अनागत भाव ना हो ॥६८४॥

## (आ) प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण

वस्तुत्व नित्य अविरुद्ध अवाध भाता,
सम्यक्तया सहज ज्ञान उसे जनाता।
होता प्रमाण वह ज्ञान अतः सुधा है,
प्रत्यक्ष पावन परोक्षतया द्विधा है ॥६८५॥

ये धातु दो अशु तथा अश जो कहाती,
व्याप्त्यर्थ में अशन में क्रमशः सुहाती।
है अक्ष शब्द वनता सहसा इन्हीं से,
ऐसा सदा समझ तू नहि औ किसी से ॥

है जीव अक्ष जग वैभव भोगता है,
सर्वार्थ में सहज व्याप सुशोभता है।
तो अक्ष से जनित ज्ञान वही कहाता,
'प्रत्यक्ष' है त्रिविध आगम यों वताता ॥६८६॥

द्रव्येन्द्रियाँ मनस पुद्गल भाव धारें,
है अक्ष से इसलिए अति भिन्न न्यारे।
संजात ज्ञान इनसे वह ठीक वैसा,
होता परोक्ष वस लिंगज ज्ञान जैसा ॥६८७॥

होते परोक्ष मति औ श्रुत जीव के हैं,
औचित्य है परनिमित्तक क्योंकि वे हैं।
किंवा अहे परिनिमित्तक हो न कैसे ?
हो प्राप्तअर्थ-स्मृति से अनुमान जैसे ॥६८८॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६८९. एगंतेण परोक्खं, लिंगियमोहाइयं च पच्चक्खं ।
इंदियमणोभवं जं, तं संववहारपच्चक्खं ॥१६॥

## ३९. नय सूत्र

६९०. जं णाणीण वियप्पं, सुयभेयं वत्थुअंससंगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं, णाणी पुण तेण णाणेण ॥१॥

६९१. जम्हा ण णएण विणा, होइ णरस्स सियवायपडिवत्ती ।
तम्हा सो बोहव्वो, एयंतं हंतुकामेण ॥२॥

६९२. धम्मविहीणो सोक्खं, तण्हाछेयं जलेण जह रहिदो ।
तह इह वंछइ मूढो, णयरहिओ दव्वणिच्छित्ती ॥३॥

६९३. तित्थयरवयणसंगह-विसेसपत्थार-मूलवागरणी ।
दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ, य सेसा वियप्पा सिं ॥४॥

६९४. दव्वट्ठियवत्तव्वं, अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स ।
तह पज्जववत्थु, अवत्थुमेव दव्वट्ठियनयस्स ॥५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता परोक्ष श्रुत लिंगज ही, महान्,
प्रत्यक्ष हो अवधि आदिक तीन ज्ञान ।
स्वामी ! प्रसूत मति, इन्द्रिय चित्र से जो,
'प्रत्यक्ष संव्यवहरा' उपचार से हो ।।६८९।।

## ३९. नय सूत्र

द्रव्यांश को विषय है अपना वनाता,
होता विकल्प श्रुत धारक का सुहाता ।
माना गया नय वही श्रुत भेद प्यारा,
ज्ञानी वही कि जिसने नय ज्ञान धारा ।।६९०।।

एकान्त को यदि पराजित है कराना,
भाई तुम्हें प्रथम है नयज्ञान पाना ।
स्याद्वादबोध नय के विन ना निहाला,
चाबी विना नहिं खुले गृह-द्वार-ताला ।।६९१।।

ज्यों चाहता वृष विना 'जड़' मोक्ष जाना,
किंवा तृषी जल विना हि तृषा बुझाना ।
त्यों वस्तु को समझना नय के विना ही,
है चाहता अबुध ही भवराह राही ।।६९२।।

तीर्थेश का वचन सार द्विधा कहाता,
सामान्य आदिम द्वितीय विशेष भाता ।
दो द्रव्यपर्ययतया नय है उन्हीं के,
ये ही यथाक्रम विवेचक भद्र दीखे ।।६९३।।

ये दोष भेद इनके नय शेष जो भी,
तू जान ईदृश सदा तज लोभ लोभी ।
सामान्य को विषय है नय जो वनाता,
तू शून्य ही वह 'विशेष' उसे दिखाता ।
जो जानता नय सदैव विशेष को है,
सामान्य शून्य दिखता सहसा उसे है ।।६९४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६९५. उप्पज्जंति वियंति य, भावा नियमेण पज्जवनयस्स ।
दव्वट्ठियस्स सव्वं, सया अणुप्पन्नमविणट्ठं ॥६॥

६९६. दव्वट्ठिएण सव्वं, दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो ।
हवदि य अन्नमणन्नं, तक्काले तम्मयत्तादो ॥७॥

६९७. पज्जय गउणं किच्चा, दव्वं पि य जो हु गिण्हइ लोए ।
सो दव्वत्थिय भणिओ, विवरीओ पज्जयत्थिणओ ॥८॥

६९८. नेगम-संगह-ववहार-उज्जुसुए चेव होई बोधव्वा ।
सद्दे य समभिरूढे, एवंभूए य मूलनया ॥९॥

६९९. पढमतिया दव्वत्थी, पज्जयगाही य इयर जे भणिया ।
ते चदु अत्थपहाणा, सद्दपहाणा हु तिण्णि या ॥१०॥

७००. णेगाइं माणाइं, सामन्नोभयविसेसनाणाइं ।
जं तेहिं मिणइ तो, णेगमो णओ णेगमाणो त्ति ॥११॥

७०१. णिव्वित्त दव्वकिरिया, वट्टणकाले दु जं समाचरणं ।
तं भूयणइगमणयं, जह अज्जदिणं निव्वुओ वीरो ॥१२॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यार्थि की नय सदा इस भाँति गाता,
है द्रव्य तो ध्रुव त्रिकाल अवाध भाता।
पै द्रव्य है उदित होकर नष्ट होता,
पर्याय आर्थिक सदा इस भाँति रोता ॥६९५॥

द्रव्यार्थि के नयन में सव द्रव्य आते,
पर्याय अर्थिवश पर्याय मात्र भाते।
'एक्सरे' हमें हृदय-अन्दर का दिखाती,
तो कैमरा शकल ऊपर की वताती ॥६९६॥

पर्याय गौण कर द्रव्यन को जनाता,
द्रव्यार्थि की नय वही जग में कहाता।
जो द्रव्य गौण कर पर्याय को जनाता,
पर्यायअर्थिक वही यह शास्त्र गाता ॥६९७॥

जो शास्त्र में कथित नैगम, संग्रहा, रे!
है व्यावहार, ऋजुसूत्र, सशब्द प्यारे।
एवंभुता, समभिरूढ़ उन्हीं द्वयों के,
हैं भेद भूल नय सात, विवाद रोके ॥६९८॥

द्रव्यार्थि की सुनय आदिम तीन प्यारे,
पर्याय अर्थिक रहें अवशेष सारे।
हैं चार आदिम पदार्थ प्रधान जानो,
हैं शेष तीन नय शब्द प्रधान मानो ॥६९९॥

सामान्य ज्ञान इतरोभय रूप ज्ञान,
प्रख्यात नैक विध है अनुमान मान!
जाने इन्हें, सुनय नैगम है कहाता,
मानो उसे 'नयिक ज्ञान' अतः सुहाता ॥७००॥

जो भूत कार्य इस सांप्रत से जुड़ाना,
है भूत नैगम वही गुरु का वताना।
वर्षों पुरा शिवगयें युगवीर प्यारे,
मानें तथापि हम 'आज उषा' पधारे ॥७०१॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७०२. पारद्धा जा किरिया, पयणविहाणादि कहइ जो सिद्धं ।
लोए य पुच्छमाणे, तं भण्णइ वट्टमाणणयं ।।१३।।

७०३. णिप्पण्णमिव पयंपदि, भाविपदत्थं णरो अणिपण्णं ।
अप्पत्थे जह पत्थं, भण्णइ सो भावि णइगमो त्ति णओ ।।१४।।

७०४. अवरोप्परमविरोहे, सव्वं अत्थि त्ति सुद्धसंगहणे ।
होइ तमेव असुद्धं, इगजाइविसेसगहणेण ।।१५।।

७०५. जं संगहेण गहियं, भेयइ अत्थं असुद्धं सुद्धं वा ।
सो ववहारो दुविहो, असुद्धसुद्धत्थभेयकरो ।।१६।।

७०६. जो एयसमयवट्टी, गिह्णइ दव्वे धुवत्तपज्जायं ।
सो रिउसुत्तो सुहुमो, सव्वं पि सद्दं जहा खणियं ।।१७।।

७०७. मणुयाइयपज्जाओ, मणुसो त्ति सगट्ठिदीसु वट्टंतो ।
जो भणइ तावकालं, सो थूलो होइ रिउसुत्तो ।।१८।।

७०८. सवणं सपइ स तेणं, व सप्पए वत्थु जं तओ सद्दो ।
तस्सत्थपरिग्गहओ, नओ वि सद्दो त्ति हेउ व्व ।।१९।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रारम्भ कार्य भरको जन पूछने से,
'पूरा हुआ' कि कहना सहसा मजे से।
ओ वर्तमान नय नैगम नाम पाता,
ज्यों पाक के समय ही वस भात भाता ।।७०२।।

होगा, अभी नहि हुवा फिर भी वताना।
लो! कार्य पूरण हुवा रट यों लगाना।
भावी सुनैगम यही समझो सुजाना,
जैसा उगा रवि न किन्तु उगा वताना ।।७०३।।

कोई विरोध विन आपस में प्रबुद्ध,
सत् रूप से सकल को गहता 'विशुद्ध'।
जात्येक भेद गहता उनमें 'अशुद्ध',
यों है द्विधा सुनय संग्रह पूर्ण सिद्ध ।।७०४।।

संप्राप्त संग्रहतया द्विविधा पदार्थ—
जो है प्रभेद करता उसका यथार्थ।
ओ व्यावहार नय भी द्विविधा, स्ववेदी!
'शुद्धार्थ भेदक' अशुद्ध पदार्थ भेदी ।।७०५।।

जो द्रव्य में ध्रुव न ही पल आयुवाली,
पर्याय हो वियत में विजली निराली।
जाने उसे कि ऋजु सूत्र सु सूक्ष्म भाता,
होता यथा क्षणिक शब्द सुनो सुहाता ।।७०६।।

देवादिपर्यय निजी स्थिति लौं सुहाता,
जो देव रूप उसको तवलौं जनाता।
तू मान स्थूल ऋजु सूत्र वही कहाता,
ऐसा यहाँ 'श्रमण सूत्र' हमें वताता ।।७०७।।

जो द्रव्य का कथन है करता, बुलाता,
आव्हान शब्द वह है जग में सुहाता।
तत्-शब्द-अर्थ भर को नय जो गहाता,
ओ हेतु सा 'सुनय शब्द' अतः कहाता ।।७०८।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७०९. जो वट्टणं ण मण्णइ, एयत्थे भिन्नलिंगआईणं ।
सो सद्दणओ भणिओ, णेओ पुस्साइआण जहा ।।२०।।

७१०. अहवा सिद्धे सद्दे, कीरइ जं किं पि अत्थववहरणं ।
तं खलु सद्दे विसयं, 'देवो' सद्देण जह देवो ।।२१।।

७११. सद्दारूढो अत्थो, अत्थारूढो तहेव पुण सद्दो ।
भणइ इह समभिरूढो, जय इंद पुरंदरो सक्को ।।२२।।

७१२. एवं जह सद्दत्थो, संतो भूओ तदन्नहाऽभूओ ।
तेणेवंभूयनओ, सद्दत्थपरो विसेसेण ।।२३।।

७१३. जं जं करेइ कम्मं, देही मणवयणकायचेट्ठादो ।
तं तं खु णामजुत्तो, एवंभूओ हवे स णओ ।।२४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकार्थ के वचन में वच लिंग भेद,
है देख शब्दनय ही करता अर्थ भेद।
पुंलिंग में व तियलिंगन में सुचारा,
ज्यों पुष्य शब्द बनता 'नक्षत्र·तारा' ।।७०९।।

जो शब्द व्याकरण-सिद्ध, सदा उसी में,
होता तदर्थ अभिरूढ़ न औ किसी में।
स्वीकार ना बस उसे उस शब्द द्वारा,
है मात्र शब्दनय का वह काम सारा।
ज्यों देव शब्द सुन आशय 'देव' लेना,
भाई तदर्थ गहना तज शेष देना ।।७१०।।

प्रत्येक शब्द अभिरूढ़ स्वअर्थ में हो,
प्रत्येक अर्थ अभिरूढ़ स्वशब्द में हो।
है मानता समभिरूढ़ सदैव ऐसे,
ये शब्द 'इन्दर' 'पुरन्दर' शक्र जैसे ।।७११।।

शब्दार्थ रूप अभिरूढ़ पदार्थ 'भूत'
शब्दार्थ से स्खलित अर्थ अतः 'अभूत'।
एवंभुता सुंनय है इस भाँति गाता,
शब्दार्थ तत् पर विशेष अतः कहाता ।।७१२।।

जो जो क्रिया जन तनादितया करें ओ !
तत् तत् क्रिया गमक शब्द निरे निरें हो !
एवं भुता नय अतः उस शब्द का है,
सम्यक् प्रयोग करता जब काम का है।
जैसा सुसाधु रत साधन में सही हो,
स्तोता वही कर रहा स्तुति स्तुत्य की हो ।।७१३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ४०. स्याद्वाद व सप्तभंगी सूत्र

७१४. अवरोप्परसावेक्खं, णयविसयं अह पमाणविसयं वा ।
तं सावेक्खं भणियं, णिरवेक्खं ताण विवरीयं ।।१ ।

७१५. णियमणिसेहणसीलो, णिपादणादो य जो हु खलु सिद्धो ।
सो सियसद्दो भणिओ, जो सावेक्खं पसाहेदि ।।२।।

७१६. सत्तेव हुंति भंगा, पमाणणयदुणयभेदजुत्ता वि ।
सिय सावेक्खं पमाणं; णएण नय दुणय णिरवेक्खा ।।३।।

७१७. अत्थि त्ति णत्थि दो वि य, अव्वत्तव्वं सिएण संजुत्तं ।
अव्वत्तव्वा ते तह, पमाणभंगी सुणायव्वा ।।४।।

७१८. अत्थिसहावं दव्वं, सद्दव्वादीसु गाहियणएण ।
तं पि य णत्थिसहावं, परदव्वादीहि गहिएण ।।५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ४०. स्याद्वाद सप्तभंगी सूत्र

हो 'मान' का विषय या नय का भले हो,
दोनों परस्पर अपेक्ष दिये हुए—हो।
सापेक्ष है विषय ओ तव ही कहाता,
हो अन्यथा कि इससे निरपेक्ष भाता ।।७१४।।

एकान्त का नियति का करता निषेध,
है सिद्ध शाश्वत निपाततया 'अवेद'* ।
'स्यात्' शब्द है वह जिनागम में कहाता,
आपेक्ष सिद्ध करता सवको सुहाता ।।७१५।।

भाई प्रमाण-नय दुर्नय भेद वाले,
हैं सप्त भंग वनते क्रमवार न्यारे।
'स्यात्' की अपेक्ष रखते परमाण प्यारे !
शोभें नितान्त नय से नयभंग सारे।
सापेक्ष दुर्नय नहीं, निरपेक्ष होते,
एकान्त पक्ष रखते दुःख को संजोते ।।७१६।।

स्यादस्ति, नास्ति, उभया-वक्तव्य चौथा,
भाई त्रिधा-अवक्तव्य तथैव होता।
यों सप्त भंग लसते परमाण के हैं,
ऐसा कहें जिनप आलय ज्ञान के हैं ।।७१७।।

क्षेत्रादिरूप इन स्वीय चतुष्टयों से,
अस्तिस्वरूप सव द्रव्य युगों-युगों से।
क्षेत्रादिरूप परकीय चतुष्टयों से,
नास्ति स्वरूप प्रतिपादित साधुओं से ।।७१८।।

---

* अवेद=लिंगातीत स्यात् शब्द अव्यय है



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७१९. उहयं उहयणएण, अव्वत्तव्वं च तेण समुदाए।
तं तिय अव्वत्तव्वा, णियणियणयअत्थसंजोए ।।६।।

७२०. अत्थि त्ति णत्थि उहयं, अव्वत्तव्वं तहेव पुण तिदयं।
तह सिय णयणिरवेक्खं, जाणसु दव्वे दुणयभंगी ।।७।।

७२१. एक्कणिरुद्धे इयरो, पडिवक्खो अवरे य सब्भावो।
सव्वेसिं स सहावे, कायव्वा होइ तह भंगा ।।८।।

## ४१. समन्वय सूत्र

७२२. सव्वं पि अणेयंतं, परोक्खरूवेण जं पयासेदि।
तं सुयणाणं भण्णदि, संसय-पहुदीहि परिचत्तं ।।१।।

७२३. लोयाणं ववहारं, धम्म-विवक्खाइ जो पसाहेदि।
सुयणाणस्स वियप्पो, सो वि णओ लिंगसंभूदो ।।२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो स्वीय औ परचतुष्टय से सुहाती,
स्यादस्ति नास्ति मय वस्तु वही कहाती।

औ एक साथ कहते द्वय धर्म को है,
तो वस्तु हो अवकतव्य प्रमाण सो है।
यों स्वीय स्वीय नय संग पदार्थ जानो,
तो सिद्ध हों अवकतव्य त्रिभंग मानो ।।७१९।।

एकैक भंग मय ही सव द्रव्य भाते,
एकान्त से सतत यों रट जो लगाते।
वे सात भंग तव दुर्नय – भंग होते,
स्यात् शव्द से सुनय से जव दूर होते ।।७२०।।

ज्यों वस्तु का पकड़ में इक धर्म आता,
तो अन्य धर्म उसका स्वयमेव भाता।
वे क्योंकि वस्तुगत धर्म, अत: लगाओ,
'स्यात्' सप्त भंग सव में झगड़ा मिटाओ ।।७२१।।

## ४१. समन्वय सूत्र

जो ज्ञान यद्यपि परोक्षतया जनाता,
नैकान्त रूप सवको फिर भी वताता।
है संशयादिक प्रदोष-विहीन साता,
तू जान मान 'श्रुत ज्ञान' वही कहाता ।।७२२।।

जो वस्तु के इक अपेक्षित धर्म द्वारा,
साधें सुकार्य जग के, नय ओ पुकारा।
औ भेद भी नय वही श्रुत ज्ञान का है,
माना गया तनुज भी अनुमान का है ।।७२३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७२४. णाणाधम्मजुदं पि य, एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं ।
तस्सेयविवक्खादो, णत्थि विवक्खा हु सेसाणं ॥३॥

७२५. ते सावेक्खा सुणया, णिरवेक्खा ते वि दुण्णया होंति ।
सयल-ववहार-सिद्धी, सुणयादो होदि णियमेण ॥४॥

७२६. जावंतो वयणपधा, तावंतो वा नया 'वि' सद्दाओ ।
ते चेव य परसमया, सम्मत्तं समुदिया सव्वे ॥५॥

७२७. परसमएगनयमयं, तप्पडिवक्खनयओ निवत्तेज्जा ।
समए व परिग्गहियं, परेण जं दोसबुद्धीए ॥६॥

७२८. णिययवयणिज्जसच्चा, सव्वनया परवियालणे मोहा ।
ते उण ण दिट्ठसमओ, विभयइ सच्चे व अलिए वा ॥७॥

७२९. न समेन्ति न य समेया, सम्मत्तं नेव वत्थुणो गमगा ।
वत्थुविघायाय नया, विरोहओ वेरिणो चेव ॥८॥

७३०. सव्वे समयंति सम्मं, चेगवसाओ नया विरुद्धा वि ।
मिच्च-ववहारिणो इव, राओदासीण-वसवत्ती ॥९॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते अनन्त गुण धर्म पदार्थ में हैं,
पै एक को हि चुनता नय ठीक से है।
तत्काल क्योंकि रहती उसको अपेक्षा,
हो शेष गौण गुण, ना उनकी उपेक्षा ।।७२४।।

सापेक्ष ही सुनय हो सुख को संजोते,
माने गये कुनय हैं निरपेक्ष होते।
संपन्न हो सुनय से व्यवहार सारे
नौका समान भव पार तुझे उतारे ।।७२५।।

ये वस्तुतः वचन हैं जितने सुहाते,
हे भव्य जान नय भी उतने हि पाते।
मिथ्या अतः नय हटी कुपथः प्रकाशी,
सापेक्ष सत्य नय मोह-निशा-विनाशी ।।७२६।।

एकान्तपूर्ण कुनयाश्रित पंथ का वे,
स्याद्वाद विज्ञ परिहार करें करावें।
औ ख्याति लाभ वश जैन वना हटी हो,
ऐसा पराजित करो पुनि ना त्रुटी हो ।।७२७।।

सच्चे सभी नय निजी विषयों स्थलों में,
झूठे परस्पर लड़ें निशि-वासरों में।
'ये' सत्य 'वे' सव असत्य कभी अमानी,
ऐसा विभाजित उन्हें करते न ज्ञानी ।।७२८।।

ना वे मिले, यदि मिले तुम हो मिलाते,
सच्चे कभी कुनय पै वन है न पाते।
ना वस्तु के गमक हैं उनमें न बोधि,
सर्वस्व नष्ट करते रिपु में विरोधी ।।७२९।।

सारे विरुद्ध नय भी वन जायँ अच्छे,
स्याद्वाद की शरण ले कहलायँ सच्चे।
पाती प्रजा वल प्रजापति छत्र में ज्यों,
दोषी विदोष वनते मुनि संघ में त्यों ।।७३०।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७३१. जमणेगधम्मणो वत्थुणो, तदंसे च सव्वपडिवत्ती ।
अंध व्व गयावयवे तो, मिच्छाद्दिट्ठिणो वीसु ।।१०।।

७३२. जं पुण समत्तपज्जाय - वत्थुगमग त्ति समुदिया तेणं ।
सम्मत्तं चक्खुमओ, सव्वगयावयवगहणे व्व ।।११।।

७३३. पण्णवणिज्जा भावा, अणंतभागो तु अणभिलप्पाणं ।
पण्णवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुदणिबद्धो ।।१२।।

७३४. सयं सयं पसंसंता, गरहंता परं वयं ।
जे उ तत्थ विउस्संति, संसारं ते विउस्सिया ।।१३।।

७३५. णाणाजीवा णाणाकम्मं, णाणाविहं हवे लद्धी ।
तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहिं वज्जिज्जा ।।१४।।

७३६. भद्दं मिच्छादंसण-समूहमइयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ, संविग्गसुहाहिगम्मस्स ।।१५।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते अनन्त गुण, द्रव्यन में सयाने,
द्रव्यांश को अबुध पूरण द्रव्य माने।
छू अंगा अंग गजके प्रति अंग को ही,
ज्यों अध वे गज कहें, अयि भव्य मोही! ।।७३१।।

सर्वांगपूर्ण गज को दृग से जनाता,
तो सत्य ज्ञान गज का उसका कहाता।
सम्पूर्ण द्रव्य लखता सब ही नयों से,
है सत्य ज्ञान उसका स्तुत साधुओं से ।।७३२।।

संसार में अमित द्रव्य अकथ्य भाते,
श्री वीर देव कहते मित कथ्य पाते।
लो कथ्य का कथित भाग अनन्तवाँ है,
जो शस्त्र रूप वह भी बिखरा हुआ है ।।७३३।।

निंदा तथापि नित जो पर के पदों की,
शंसा अतीव करते अपने मतों की।
पांडित्य, पूजन यशार्थ दिखा रहे हैं,
संसार को सघन और बना रहे हैं ।।७३४।।

संसार में विविध कर्म-प्रणालियाँ हैं,
ये जीव भी विविध औ उपलब्धियाँ हैं।
भाई अतः मत विवाद करो किसी से,
साधर्मि से, अनुज से, पर से, अरी से ।।७३५।।

हे भव्यजीव–मति गम्य जिनेन्द्र वाणी,
पीयूष-पूरित, पुनीत, प्रशान्ति–खानी।
सापेक्ष पूर्ण नय आलय पूर्ण साता,
आसूर्य जीवित रहे जयवन्त माता ।।७३६।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ४२. निक्षेप सूत्र

७३७. जुत्तीसुजुत्तमग्गे, जं चउभेएण होइ खलु ठवणं ।
कज्जे सदि णामादिसु, तं णिक्खेवं हवे समए ॥१॥

७३८. दव्वं विविहसहावं, जेण सहावेण होइ तं झेयं ।
तस्स निमित्तं कीरइ, एक्कं पि य दव्व चउभेयं ॥२॥

७३९. णाम ट्ठवणा दव्वं, भावं तह जाण होइ णिक्खेवं ।
दव्वे सण्णा णामं, दुविहं पि य तं पि विक्खायं ॥३॥

७४०. सायार इयर ठवणा, कित्तिम इयरा दु बिंबजा पढमा ।
इयरा इयरा भणिया, ठवणा अरिहो य णायव्वो ॥४॥

७४१. दव्वं खु होइ दुविहं, आगम-णोआगमेण जह भणियं ।
अरहंत-सत्थ-जाणो, अणजुत्तो दव्व-अरिहंतो ॥५॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## ४२. निक्षेप सूत्र

कोई प्रयोजन रहे तव युक्ति साथ,
औचित्य पूर्ण पथ में रखना पदार्थ।
'निक्षेप' है समय में वह नाम पाता,
नामादि के वश चतुर्विध है कहाता ।।७३७।।

नाना स्वभाव अवधारक द्रव्य प्यारा,
जो ध्येय ज्ञेय वनता जिस भाव द्वारा।
तद्भाव की वजह से इक द्रव्य के ही,
ये चार भेद बनते सुन भव्य देही ।।७३८।।

ये 'नाम' स्थापन, व 'द्रव्य' स्वभाव—चारों,
निक्षेप हैं तुम इन्हें मन में सुधारो।
है नाम मात्र वस द्रव्यन की सुसंज्ञा,
है नाम भी द्विविध ख्यात, कहे जिनज्ञा ।।७३९।।

आकार औ' इतर 'स्थापन' यों द्विधा है,
अर्हन्त विम्व कृत्रिमतर आदि का है।
आकार के विन जिनेश्वर स्थापना को,
तू दूसरा समझ रे ! तज वासना को ।।७४०।।

जो द्रव्य को गत अनागत भाव वाला,
स्वीकारता कर सुसांप्रत गौण सारा।
निक्षेप 'द्रव्य' वह आगम में कहाता,
विश्वास मात्र उसमें बस भव्य लाता ।।

निक्षेप द्रव्य, द्विविधा वह है कहाता,
नोआगमागमतया सहसा – सुहाता।
ना शास्त्रलीन रहता, जिन-शास्त्र ज्ञाता,
ओ द्रव्य आगम जिनेश तदा कहाता ।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७४२. णोआगमं पि तिविहं, देहं णाणिस्स भाविकम्मं च।
णाणिसरीरं तिविहं, चुद चत्तं चाविदं चेति ॥६॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नो आगमा त्रिविध 'ज्ञायक देह' भावी,
औ 'कर्म रूप' जिन यों कहते स्वभावी।

हे ! भव्य तू समझ ज्ञायक भी त्रिधा है,
जो भूत सांप्रत भविष्यत या कहा है।।
औ त्यक्त च्यावित तथा च्युत यों त्रिधा है,
औ 'भूत ज्ञायक' जिनागम में लिखा है।।

शास्त्रज्ञ की जड़मयी उस देह को ही,
तद्रूप जो समझना अपि भव्यमोही।
माना गया कि वह 'ज्ञायक देह' भेद,
ऐसा जिनेश कहते जिनमें न खेद।।

नीतिज्ञ के मृतक केवल देह को ले,
लो 'नीति' ही मर चुकी जिस भाँति बोले।।

जो द्रव्य की कल दशा वन जाए कोई,
तद्रूप आज लखना उस द्रव्य को ही।
श्री वीर के समय में वस 'भावि' सोही,
राजा यथा समझना युवराज को ही।।

कर्मानुसार अथवा जग मान्यता ले,
रे ! वस्तु का ग्रहण जो करले कराले।
है 'कर्म भेद' वह निश्चित ही कहाता,
ऐसा 'वसन्त तिलका' यह छन्द गाता।।

देवायु कर्म जिसने वस वाँध पाया,
ज्यों आज ही समझना यह 'देव राया'।
या पूर्ण कुम्भ कलदर्पण आदि भाते,
लोकोपचार वश मंगल ये कहाते।।७४१–७४२।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७४३. आगम-णोआगमदो, तहेव भावो वि होदि दव्वं वा ।
अरहंतसत्थजाणो, आगमभावो हु अरहंतो ॥७॥

७४४. तग्गुणए य परिणदो, णोआगमभाव होइ अरहंतो ।
तग्गुणएई झादा, केवलणाणी हु परिणदो भणिओ ॥८॥

## ४३. समापन

७४५. एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी, अणुत्तरदंसी अणुत्तरणाणदंसणधरे ।
अरहा नायपुत्ते भगवं, वेसालिए वियाहिए त्ति बेमि ॥१॥

७४६. णहि णूण पुरा अणुस्सुयं, अदुवा तं तह णो समुट्ठियं ।
मुणिणा सामाइ आहियं, नाएणं जगसव्वदंसिणा ॥२॥

७४७. अत्ताण जो जाणइ जो य लोगं, जो आगतिं जाणइ णागतिं च ।
जो सासयं जाण असासयंच, जातिं मरणं च चयणोववातं ॥३॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है द्रव्य सांप्रतदशामय यों वताता,
निक्षेप 'भाव' वह आगम में कहाता।
नोआगमागम तया वह भी द्विधा है,
वाणी जिनेन्द्र-कथिता कहती सुधा है ।।

आत्मोपयोग जिन आगम में लगाता,
अर्हन् उसी समय है जिन शास्त्र-ज्ञाता।
तो 'भाव आगम' नितान्त यही रहा है,
ऐसा यहाँ श्रमण सूत्र वता रहा है ।।

अर्हन्त के गुण सभी प्रकटें जभी से,
अर्हन्त देव उनको कहना तभी से।
है केवली जव उन्हीं गुण धार ध्याता,
'नो आगमा' वह जिनागम में कहाता ।।७४३–७४४।।

## ४३. समापन

अर्हन् प्रभो ! अमित दर्शन-ज्ञान स्पर्शी,
वे 'ज्ञातृ पुत्र' निखिलज्ञ, अनन्तदर्शी।
वैशालि में जनम सन्मति ने लिया था,
धर्मोपदेश इस भाँति हमें दिया था ।।७४५।।

श्री वीर ने सुपथ यद्यपि था दिखाया,
था कोटिशः सदुपदेश हमें सुनाया।
धिक्कार ! किन्तु हमने उसको सुना ना,
मानो ! सुना पर कभी उसको गुना ना ।।७४६।।

जो साधु आगति-अनागति कारणों को,
पीड़ा प्रमोद प्रद आस्रव-संवरों को।
औ जन्म को मरण को जिनके गुणों को,
त्रैलोक्य में स्थित अशाश्वत शाश्वतों को ।।७४७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७४८. अहो वि सत्ताण वि ठ्ठुणं च, जो आसवं जाणति संवरं च।
दुक्खं च जो जाणइ णिज्जरं च, सो भासिउमरिहति किरियवादं ।।

७४९. लद्धं अलद्धपुव्वं, जिणवयण-सुभासिदं अमिदभूदं ।
गहिदो सुग्गइमग्गो, णाहं मरणस्स बीहेमि ।।५।।

## वीर-स्तवन

७५०. णाणं सरणं मे, दंसणं च सरणं च चरिय सरणं च ।
तव संजमं च सरणं, भगवं सरणो महावीरो ।।१।।

७५१. से सव्वदंसी अभिभूयणाणी, णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ।।२।।

७५२. से भूइपण्णे अणिएयचारी, ओहंतलरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरे तवति सूरिए व, वइरोयणिंदेव तमं पगासे ।।३।।

७५३. हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो, निव्वाणवादीणिह नायपुत्ते ।।४।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

औ स्वर्ग को नरक को दुःख निर्जरा को,
है जानते च्यवन को उपपादता को।
श्रीमोक्ष-पंथ प्रतिपादन कार्य में है,
वे योग्य, वंदन त्रिकाल करूँ उन्हें मैं ।।७४८।।

वाणी सुभाषित सुधा, शुचि 'वीर की' है,
थी पूर्व प्राप्त न, अपूर्व अभी मिली है।
क्यों मृत्यु से फिर डरूँ, तज सर्वग्रन्थि,
मैं हो गया जब प्रभो शिवपंथ-पंथी ।।७४९।।

## वीर-स्तवन

सम्यक्त्व–बोध व्रत पावन–शील न्यारे,
मेरे रहें शरण संयम शील सारे।
लूँ वीर की शरण भी मम प्राण प्यारे,
नौका समान भव-पार मुझे उतारे ।।७५०।।

निर्ग्रन्थ है अभय धीर अनन्त ज्ञानी,
आत्मस्थ है अमल है कर आयु-हानि।
मूलोत्तरादिगुण धारक विश्वदर्शी,
विद्वान् 'वीर' जग में जगचित्त हर्षी ।।७५१।।

सर्वज्ञ हैं अनियताचरणावलम्बी,
पाया भवाम्बुनिधि का तट स्वावलम्बी।
हैं अग्नि से निशि नशा, स्वपर-प्रकाशी,
है वीर धीर रवितेज अनन्तदर्शी ।।७५२।।

ऐरावता वरगजों हरि ज्यों मृगों में,
गंगा नदी, गरुड़ श्रेष्ठ विहंगमों में।
निर्वाणवादि मनुजों, मुनि साधुओं में,
त्यों 'ज्ञातपुत्र' वर 'वीर' मुमक्षुओं में ।।७५३।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७५४. दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ।
तवेसु वा उत्तम बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ।।५।।

७५५. जयइ जगजीवजोणी-वियाणओ जगगुरू जगाणंदो ।
जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं ।।६।।

७५६. जयइ सुयाणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ।।७।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्यों श्रेष्ठ सत्य वचनों वच कर्णप्रीय,
दानों रहा 'अभयदान' समर्च्यनीय।
है ब्रह्मचर्य तप उत्तम सत्तपों में,
त्यों 'ज्ञातृपुत्र' श्रमणेश धरातलों में ।।७५४।।

है जन्मते कब कहाँ जग जीव सारे,
जानो जगद्गुरु ! तुम्हीं जगदीश प्यारे।
धाता पितामह चराचर मोदकारी,
हो लोकबन्धु भगवन् जय हो तुम्हारी ।।७५५।।

संसार के गुरु रहें जयवन्त नामी !
तीर्थेश अन्तिम रहें जयवन्त स्वामी !
विज्ञान-स्रोत जयवन्त रहें महात्मा,
वे 'वीर देव' जयवन्त रहें महात्मा ।।७५६।।

## दोहा

मेटे वाद विवाद को निर्विवाद स्याद्वाद।
सब वादों को खुश करें पुनि-पुनि कर संवाद ।।

।। चतुर्थ खण्ड समाप्त ।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# भूल क्षम्य हो

## गुरु-स्मृति-स्तुति

### वसन्त तिलका छंद

मैं आपकी सदुपदेश सुधा न पीता,
जाती लिखी न मुझसे यह जैन गीता।
दो ज्ञान सागर गुरो मुझको सुविधा,
'विद्यादिसागर' बनूँ तजदूँ अविद्या ।।१।।

## मंगल कामना

### दोहा

लेखक, कवि मैं हूँ नहीं मुझमें कुछ नहिं ज्ञान,
त्रुटियाँ होवें यदि यहाँ शोध पढ़ें धीमान ।।२।।

यही प्रार्थना 'वीर' से अनुनय से कर जोर,
हरी भरी दिखती रहे धरती चारों ओर ।।३।।

मरहम पट्टी बाँध के वृण का कर उपचार,
ऐसा यदि ना बन सका, डंडा तो मत मार ।।४।।

फूल बिछाकर पन्थ में पर प्रति बन अनुकूल,
शूल बिछाकर भूल से मत बन तू प्रतिकूल ।।५।।

तजो रजोगुण, साम्यको सजो, भजो निज धर्म,
शम् मिले भव दुख मिटे, आशु मिटे वसु कर्म ।।६।।

## स्थान एवं समय--परिचय

श्रीधर के वलि शिव गये—कुण्डलगिरि से हर्ष,
धारा वर्षा योग उन—चरणन में इस वर्ष ।।७।।

'वड़े वावा' वड़ी कृपा, की मुझ पे आदीश,
पूर्ण हुई मम कामना पाकर जिन-आशीश ।।८।।

संग गगनगतिगंध की भादुपदी सिततीज,
पूर्ण हुवा यह ग्रन्थ है मुक्ति मुक्ति का बीज ।।९।।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## वीर - स्तवन

सम्यक्त्व–बोध व्रत पावन–शील न्यारे,
मेरे रहें शरण संयम शील सारे।
लूँ वीर की शरण भी मम प्राण प्यारे,
नौका समान भव-पार मुझे उतारे ।।१।।

निर्ग्रन्थ है अभय धीर अनन्त ज्ञानी,
आत्मस्थ है अमल है कर आयु-हानि।
मूलोत्तरादिगुण धारक विश्वदर्शी,
विद्वान् 'वीर' जग में जगच्चित्त हर्षी ।।२।।

सर्वज्ञ हैं अनियताचरणावलम्वी,
पाया भवाम्वुनिधि का तट स्वावलम्वी।
है अग्नि से निशि नशा, स्वपर-प्रकाशी,
है वीर धीर रवितेज अनन्तदर्शी ।।३।।

ऐरावता वरगजों हरि ज्यों मृगों में,
गंगा नदी, गरुड़ श्रेष्ठ विहंगमों में।
निर्वाणवादि मनुजों, मुनि साधुओं में,
त्यों 'ज्ञातृपुत्र' वर 'वीर' मुमुक्षुओं में ।।४।।

ज्यों श्रेष्ठ सत्य वचनों वच कर्णप्रीय,
दानों रहा 'अभयदान' समर्च्यनीय।
है ब्रह्मचर्य तप उत्तम सत्तपों में,
त्यों 'ज्ञातृपुत्र' श्रमणेश धरातलों में ।।५।।

प्राप्ति स्थान (१) विमलकुमार मलैया, स्टेशनर्स, 'सागरश्री', कटरा बाजार, सागर; (२) गुलावचन्द्र पटनावाले, अशोक जनरल स्टोर्स, बड़ा बाजार, सागर (मध्यप्रदेश)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi